पूर्वांचल खेती

वर्ष : 34 फरवरी 2024 अंक : 02

प्रसार निदेशालय
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

पूर्वांचल खेती

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

पूर्वाञ्चल खेती

वर्ष 34 फरवरी 2024 अंक 02

संरक्षक

डॉ. बिजेन्द्र सिंह

कुलपति

प्रधान सम्पादक

डॉ. आर. आर. सिंह

अपर निदेशक प्रसार

तकनीकी सम्पादक

डॉ. के.एम. सिंह

वरिष्ठ प्रसार अधिकारी/सह प्राध्यापक

डॉ. अनिल कुमार

सहायक प्राध्यापक, प्रक्षेत्र प्रबन्ध

सम्पादक मण्डल

डॉ. वी. पी. चौधरी

सहायक प्राध्यापक, पादप रोग

डॉ. पंकज कुमार

सहायक प्राध्यापक, कीट विज्ञान

सम्पादक

उमेश पाठक

मोबाइल नं. 9415720306

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखक के निजी हैं। प्रकाशक/सम्पादक इसके लिए उत्तरदायी नहीं है

विषय सूची

गेंदा पुष्प उत्पादन तकनीक द्वारा आय सृजन 01
वी०पी० शाही, प्रवीण कुमार मौय, अमन सिंह

टिकाऊ खेती एवं पर्यावरण संरक्षण हेतु कृषि अवशेषों की बेहतर कम्पोस्टिंग तकनीक 03
रुद्र प्रताप सिंह, के०एम० सिंह, रणधीर नायक एवं डी०के० सिंह

मूँग की वैज्ञानिक खेती 09
उमेश बाबू, राम भरोसे एवं विनय कुमार

सूरजमुखी की वैज्ञानिक खेती 12
सर्वजीत, प्रदीप कुमार एवं ओम प्रकाश

सब्जियों में पोषक तत्व प्रबन्धन 14
प्रवीण कुमार मिश्र, शशिकांत यादव एवं आर०आर० सिंह

प्राकृतिक खेती : कम लागत की तकनीकी 16
रणधीर नायक, अर्चना देवी एवं डी०के० सिंह

चना फली छेदक के प्रकोप के पूर्वानुमान की विधि 20
लाल पंकज कुमार सिंह एवं चन्दन सिंह

पपीता की उन्नत बागवानी 21
एस०पी० सिंह एवं एस०के० तोमर

बेल की वैज्ञानिक खेती 26
प्रमोद कुमार सिंह एवं अंकिता गौतम

सफलता की कहानी–समेकित कृषि से आय संवर्धन 29
वी०पी० सिंह, गौरव पाण्डेय एवं सौरभ वर्मा

फरवरी माह में किसान भाई क्या करें 30

प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के 30

प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

विश्वविद्यालय के कार्य क्षेत्र में स्थापित विभिन्न कृषि विज्ञान/ज्ञान केन्द्र एवं अनुसंधान केन्द्र

क्र. सं.	कृषि विज्ञान केन्द्र	वरिष्ठ वैज्ञानिक/अध्यक्ष/ प्रभारी अधिकारी	दूरभाष कार्यालय	मोबाइल
1.	वाराणसी	डॉ. नरेन्द्र रघुवंशी	05542–248019	9415687643
2.	बस्ती	डॉ. एस.एन. सिंह	05498–258201	9450547719
3	बलिया	डॉ. संजीत कुमार	–	9837839411
4.	फैजाबाद	डॉ. विनायक शाही	05278–254522	8755011086
5.	मऊ	डॉ. वी.के. सिंह	0547–2536240	8005362591
6.	चंदौली	डॉ. एस. पी. सिंह	0541–2260595	9458362153
7.	बहराइच	डॉ. शैलेन्द्र सिंह	05252–236650	9411195409
8.	गोरखपुर	डॉ. सतीश कुमार तोमर	–	9415155518
9.	आज़मगढ़	डॉ. डी.के. सिंह	–	9456137020
10.	बाराबंकी	डॉ. शैलेश कुमार सिंह	–	9455501727
11.	महाराजगंज	डॉ. डी. पी. सिंह	–	7839325836
12.	जौनपुर	डॉ. सुरेश कुमार कनौजिया	–	9984369526
13.	सिद्धार्थनगर	डॉ. ओ.पी. वर्मा	05541–241047	9452489954
14.	सोनभद्र	डॉ. पी. के. सिंह	–	9415450175
15.	बलरामपुर	डॉ. एस. के. वर्मा	–	9450885913
16.	अम्बेडकरनगर	डॉ. रामजीत	–	9918622745
17.	संतकबीरनगर	डॉ. अरविन्द सिंह	–	9415039117
18.	अमेठी	डॉ. रतन कुमार आनन्द	–	9838952621
19.	बहराइच (नानपारा)	डॉ. शशिकान्त यादव	–	9415188020
20.	मनकापुर–गोण्डा	डॉ. मिथलेश पाण्डे	–	9415665138
21.	बरासिन–सुल्तानपुर	डॉ. वी.पी. सिंह	–	9839420165
22.	अमिहित–जौनपुर	डॉ. आर.के. सिंह	–	9452990600
23.	गाजीपुर	डॉ. आर. सी. वर्मा	–	9411320383
24.	श्रावस्ती	डॉ. विनय कुमार	–	7524828225
25.	आजमगढ़ (लैदोरा)	डॉ. एल.सी. वर्मा	–	7376163318

विश्वविद्यालय के कृषि ज्ञान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि विज्ञान केन्द्र	प्रभारी अधिकारी/	मोबाइल	दूरभाष कार्यालय
1.	अमेठी	डॉ. आर. आर. सिंह	9450938866	–
2.	गोण्डा	डॉ. आर. आर. सिंह	9450938866	–
3.	देवरिया	डॉ. आर. आर. सिंह	9450938866	–
4.	गाजीपुर	डॉ. आर. आर. सिंह	9450938866	–

विश्वविद्यालय के अनुसंधान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि अनुसंधान केन्द्र	प्रभारी अधिकारी/	मोबाइल	दूरभाष कार्यालय
1.	मसौधा, फैजाबाद	डॉ. डी. के. द्विवेदी	7706884188	05278–254153
2.	तिसुही, मिर्जापुर	डॉ. पी. के. सिंह	9415450175	05442–284263
3.	बसुली, महाराजगंज	डॉ. डी. पी. सिंह	9451430507	–
4.	घाघरा घाट, बहराइच	डॉ. महेन्द्र सिंह	9934318392	0525–235205
5.	बड़ा बाग, गाजीपुर	डॉ. सी. पी. सिंह	9628631637	–
6.	बहराइच	डॉ. महेन्द्र सिंह	9934318392	0548–223690

डॉ. आर. आर. सिंह
अपर निदेशक प्रसार

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या-224 229 (उ.प्र.), भारत
टेलीफैक्स : 05270-262821
फैक्स : 05270-262821

सम्पादकीय

हमारे देश में कृषि का वार्षिक कैलेण्डर रबी, खरीफ व जायद फसलों के रूप में बँटा हुआ है। हमारे किसान भाई रबी व खरीफ की फसलों के प्रति जितने संवेदनशील हैं उसकी अपेक्षा जायद फसलों के प्रति कम आकर्षण देखा गया है। जब कि वास्तविकता यह है कि जायद में ली जाने वाली ज्यादातर फसलें पूरी तरह व्यवसायिक हैं जिनका उत्पादन प्राप्त कर किसान भाई आसानी से अपनी कृषि आधारित आय में वृद्धि कर सकते हैं तथा मृदा के तापक्रम को बढ़ने से रोकने के कारण मृदा जीवाणुओं व उर्वराशक्ति बढ़ाने में सहयोग करता है। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर पत्रिका के इस अंक में प्रमुख जायद फसलों व बागवानी फसलों की वैज्ञानिक तकनीकी पर लेख प्रस्तुत किये गये हैं। इस अंक से हमारे कार्यक्षेत्र के किसी न किसी एक प्रगतिशील किसान की सफलता की कहानी का प्रकाशन भी पत्रिका में किया जा रहा है। आशा है कि पत्रिका का यह अंक व प्रयोग हमारे किसान भाइयों, प्रसार कार्यकर्ताओं व ग्रामीण युवाओं को नई दिशा दिखा सकेगा।

(आर.आर. सिंह)

गेंदा पुष्प उत्पादन तकनीक द्वारा आय सृजन

वी०पी० शाही,* प्रवीण कुमार मौय,** अमन सिंह,*** राम गोपाल,**** एवं पंकज कुमार सिंह*****

गेंदा बहुत ही उपयोगी एवं आसानी से उगाया जाने वाला फूलों का पौधा है। यह मुख्य रूप से सजावटी फसल है। यह खुले फूल, माला एवं भू–दृश्य के लिए उगाया जाता है। इसके फूल बाजार में खुले एवं मालाएं बनाकर बेचे जाते है। गेंदे की विभिन्न ऊँचाई एवं विभिन्न रंगों की छाया के कारण भू–दृश्य की सुन्दरता बढ़ाने में इसका बड़ा महत्व है। इसके फूलों का धार्मिक एवं सामाजिक उत्सवों में बड़ा महत्व है। हमारे देश में मुख्य रूप से अफ्रीकन गेंदा और फ्रेंच गेंदा की खेती की जाती है। भारत के विभिन्न भागों में, विशेषकर मैदानों में व्यापक स्तर पर उगाया जा रहा है। हमारे देश में गेंदे के लोकप्रिय होने का कारण है इसको विभिन्न भौगोलिक जलवायु में सुगमतापूर्वक उगाया जा सकता है। मैदानी क्षेत्रों में गेंदे की तीन फसलें उगायी जाती हैं, जिससे लगभग पूरे वर्ष उसके फूल उपलब्ध रहते हैं।

बीज

संकर किस्मों में 700–800 ग्राम बीज प्रति हेक्टेयर तथा अन्य किस्मों में लगभग 4.25 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है।

मृदा (मिट्टी)

गेंदे की खेती विभिन्न प्रकार की मृदा में की जा सकती है। वैसे गहरी मृदा उर्वरायुक्त मुलायम जिसकी नमी ग्रहण क्षमता उच्च हो तथा जिसका जल निकास अच्छा हो उपयुक्त रहती है। विशेष रूप से बलुई–दोमट मृदा जिसका पी.एच. 7.0–7.5 सर्वोत्तम रहती है।

जलवायु

गेंदे की खेती संपूर्ण भारतवर्ष में सभी प्रकार की जलवायु में की जाती है। विशेषतौर से शीतोष्ण और सम–शीतोष्ण जलवायु उपयुक्त होती है। नमीयुक्त खुले आसमान वाली जलवायु इसकी वृद्धि एवं पुष्पन के लिए बहुत उपयोगी है, लेकिन पाला इसके लिए नुकसानदायक होता है। इसकी खेती सर्दी, गर्मी एवं वर्षा तीनों मौसमों में की जाती है। इसकी खेती के लिए 14.5–28.6 डिग्री तापमान फूलों की संख्या एवं गुणवत्ता के लिए उपयुक्त है जबकि उच्च तापमान 26.2 से 36.4 डिग्री पुष्पोत्पादन पर विपरीत प्रभाव डालता है।

उन्नतशील किस्मों का चुनाव

1. अफ्रीकन गेंदा

पूसा नारंगी गेंदा, पूसा बसंती गेंदा, बिधान अफ्रीकन गेंदा–1, अलास्का, एप्रिकॉट, बरपीस मिराक्ल, बरपीस व्हाईट, क्रेकर जैक, क्राकऊन ऑफ गोल्ड, कूपिड़, डबलून, फ्लूसी रफल्स, फायर ग्लो, जियाण्ट सनसेट, गोल्डन एज, गोल्डन क्लाइमेक्स मंक्स जियान्ट, गोल्डन जुबली, गोल्डन मेमोयमम, गोल्डन येलो, जियान्ट डबल अफ्रीकन ओरेन्ज, जियान्ट डबल अफ्रीकन येलो इत्यादि।

शंकर प्रजातिः अपोलो, क्लाइमेक्स, फर्स्ट लेडी, गोल्ड लेडी, ग्रे लेडी, मून सोट, ओरेन्ज लेडी, शोबोट, टोरियडोर, इनका येलो, इनका गोल्ड, इनका ओरेन्ज इत्यादि।

2. फ्रेन्च गेंदा

(अ) सिंगलः डायण्टी मरियटा, नॉटी मेरियटा, सन्नी, टेट्रा रफल्ड रेड इत्यादि।

(ब) डबलः बोलेरो, बोनिटा, ब्राउनी स्कॉट, बरसीप गोल्ड नगेट, बरसीप रेड एण्ड गोल्ड, बटर स्कॉच, कारमेन, कूपिड़ येलो, एल्डोराडो, फोस्टा, गोल्डी, जिप्सी डवार्फ डबल हारमनी, लेमन ड्राप, मेलोडी, मिडगेट हारमनी, ओरेन्ज फ्लेम, पेटाइट गोल्ड, पेटाइट हारमनी, प्रिमरोज क्लाइमेक्स, रेड ब्रोकेड, रस्टी रेड, स्पेनिश ब्रोकेड, स्पनगोल्ड, स्प्री, टेन्जेरीन, येलो पिग्मी इत्यादि।

3. मैक्सिन गेंदा

इस वर्ग की प्रजातियों में प्रमुख है : टगेट्स ल्यूसीडा, टगेट्स लेम्मोनी, टगेट्स माइन्यूटा

खाद्य एवं उर्वरक

250–300 कुन्तल प्रति हेक्टर की दर से गोबर की खाद भूमि में जुताई कर मिला देना चाहिए। अच्छी

*वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, **वि.व.वि. (उद्यान), ***वि.व.वि. (जी. पी.बी.), ****वि.व.वि. (पादप सुरक्षा), *****वि.व.वि. (सस्य), कृषि विज्ञान केन्द्र, मसौधा, अयोध्या, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

बुवाई का समय

पुष्पन ऋतु	बीज बुवाई का समय	पौध रोपण का समय
वर्षा	मध्य – जून	मध्य – जुलाई
शरद	मध्य – सितम्बर	मध्य – अक्तूबर
ग्रीष्म	जनवरी– फरवरी	फरवरी – मार्च

फसल के लिए 120 किग्रा. नाइट्रोजन, 80 किग्रा. फास्फोरस तथा 80 किग्रा. पोटाश प्रति हेक्टर की दर से देना चाहिए। फास्फोरस तथा पोटाश की पूर्ण मात्रा भूमि की तैयारी करते समय ही डाल कर अच्छी तरह मिला देनी चाहिए। नाइट्रोजन को दो भागों में प्रयोग करना चाहिए। प्रथम भाग क्यारियों में पौध लगाने के एक माह बाद देना चाहिए तथा दूसरा भाग पौधा लगाने के दो महीने बाद प्रयोग करना चाहिए।

बीज शैय्या तैयार करनाः
गेंदे की पौध तैयार करने के लिए बीज शैय्या तैयार करें, जो कि भूमि की सतह से 15 से.मी. ऊँची होनी चाहिए ताकि जल का निकास ठीक ढंग से हो सके। बीज शैय्या की चौड़ाई 1 मीटर तथा लंबाई आवश्यकतानुसार रखें। बीज बुवाई से पूर्व बीज शैय्या का 0.2 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम या कैप्टान से उपचारित करें ताकि पौधे में बीमारी न लग सके और पौध स्वस्थ रहे।

बीजों की बुवाई :
अच्छी किस्मों का चयन कर बीज शइया पर सावधानीपूर्वक बुवाई करें। ऊपर उर्वर मृदा की हल्की परत चढ़ाकर, फव्वारे से धीरे–धीरे पानी का छिड़काव कर दें।

बीज दर :
800 ग्राम से 1 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर बीजों का अंकुरण 18 डिग्री से 30 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान पर बुवाई के 5–10 दिन में हो जाता है।

पौध रोपण :
अच्छी तरह तैयार क्यारियों में गेंदे के स्वस्थ पौधों को जिनकी 3–4 पत्तियां हों पौध रोपण हेतु प्रयोग करें। जहां तक संभव हो पौध रोपाई शाम के समय ही करें। तथा रोपाई के पश्चात चारों तरफ मिट्टी को दबा दें ताकि जड़ों में हवा न रहं एवं हल्की सिंचाई करें।

पौधे से पौधे की दूरी
अफ्रीकन गेंदा : 45 X 45 से.मी. या 45 X 30 से.मी.
फ्रेन्च गेंदा : 20 X 20 से.मी. या 20 X 10 से.मी.

सिंचाई
गेंदा एक शाकीय पौधा है। अतः इसकी वानस्पतिक वृद्धि बहुत तेज होती है। सामान्य तौर पर यह 55–60 दिन में अपनी वानस्पतिक वृध्दि पूरी कर लेता है तथा प्रजनन अवस्था में प्रवेश कर लेता है। सर्दियों में सिंचाई 10–15 दिन के अंतराल पर तथा गर्मियों में 5–7 दिन के अंतराल पर करें।

वृद्धि नियामकों का प्रयोग
पौधों की रोपाई के चार सप्ताह बाद एस.ए.डी.एच. का 250–2000 पी.पी.एम. पर्णीय छिड़काव करने से पौधों में समान वृद्धि पौधे में शाखाओं के बढ़ने के साथ ही फूलों की उपज व गुणवत्ता भी बढ़ती है।

पिंचिंग (शीर्ष कर्तन)
पौधे के शीर्ष प्रभाव को खत्म करने के लिए पौध रोपाई के 35–40 दिन बाद पौधों को ऊपर से चुटक देना चाहिए जिससे पौधों की बढ़वार रूक जाती है। तने से अधिक से अधिक संख्या में शाखाएं प्राप्त होती हैं तथा प्रति इर्का क्षेत्र में अधिक से अधिक मात्रा में फूल प्राप्त होते हैं।

खरपतवार नियंत्रण
खरपतवार पौधों की उपज व गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव डालते हैं, क्योंकि खरपतवार मृदा से नमी व पोषण दोनों चुराते हैं तथा कीड़ों एवं बीमारियों को भी शरण देते हैं। अतः 3–4 बार निकाई करके खरपतवार निकलवा दें तथा अच्छी गुढ़ाई कराएं।

फूलों की तुड़ाई : पूरी तरह खिले फूलों को दिन के ठण्डे मौसम में यानि कि सुबह जल्दी या शाम के समय सिंचाई के बाद तोड़े ताकि फूल चुस्त एवं दूरुस्त रहें।

तुड़ाई उपरान्त प्रबंधन :
1. फूलों को हमेशा प्रातः काल में ही पौधें से काटना चाहिए, ताकि सूर्य की तेज किरणें फूलों पर न पड़े।
2. फूलों को सदा तेज चाकू या सिकेटियर की सहायता से तिरछा काटे।
3. फूलों को जिस पात्र मे रखना है साफ होना चाहिए।
4. कटाई के बाद फूलों को छायादार स्थान पर फैलाकर रखना चाहिए।
5. पूर्ण विकसित फूलों को ही काटना चाहिए।

(शेष पृष्ठ 08 पर)

टिकाऊ खेती एवं पर्यावरण संरक्षण हेतु कृषि अवशेषों की बेहतर कम्पोस्टिंग तकनीक

रुद्र प्रताप सिंह, के०एम० सिंह* एवं डी०के० सिंह**

यह पूरी तरह से प्रमाणित हो गया है कि कृषि अवशेष या फसल अवशेष एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है, जिसका समावेश मिट्टी में करना नितांत आवश्यक है। यह न केवल मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ का महत्वपूर्ण स्रोत है बल्कि उसके जैविक, रासायनिक व भौतिक गुणों में वृद्धि कारक भी है। पौधों द्वारा अपनी वानस्पतिक व प्रजनन अवस्थाओं को पूर्ण करने हेतु मिट्टी से पोषक तत्वों का अवशोषण किया जाता है जिसमें से 25 प्रतिशत नत्रजन एवं फास्फोरस, 50 प्रतिशत गंधक एवं 75 प्रतिशत पोटाश पौधों के अवशेष यथा जड़, तना व पत्ती में संग्रहित रहते हैं। हमारे देश में उत्पादित कुल लगभग 500 लाख टन फसल अवशेषों में से केवल 22 प्रतिशत का उपयोग हो पाता है, शेष जला दिया जाता है। अवशेषों का ही प्रबंधन न होने पर इनमें पाए जाने वाले पोषक तत्व वातावरण में नष्ट हो जाते हैं। चूँकि पूर्व में कृषि और पशुपालन का कार्य साथ–साथ चलता था और फसल अवशेषों का ज्यादातर अंश पशुओं के चारे के रूप में लिया जाता था तथा पशुओं द्वारा प्राप्त गोबर को खाद बना कर खेतों में डाला जाता था, जिससे मिट्टी में पर्याप्त कार्बनिक पदार्थ की उपलब्धता रहती थी। परन्तु विगत कुछ वर्षों के दौरान खेती में श्रमिकों की कमी, कृषि कार्यों में मशीनों का प्रयोग बढ़ने और ग्रामीण क्षेत्रों में पशुपालन का कार्य कम हो जाने के कारण वर्तमान में फसल अवशेषों का समुचित प्रयोग नहीं हो पा रहा है। आज हम वैश्विक स्तर पर पर्यावरण संरक्षण, टिकाऊ या सतत् कृषि तथा कृषकों की आय में वृद्धि हेतु प्रयासरत हैं तो हमें विभिन्न पोषक तत्वों के चक्रण और फसल अवशेष प्रबंधन को ठीक से समझना होगा तथा ऐसी तकनीकी का विकास व प्रचार प्रसार करना होगा जो किसान हितैषी व कम लागत वाली हो। मिट्टी में फसल अवशेषों का पुनर्चक्रण अत्यंत आवश्यक है तथा इसे दो प्रकार से किया जा सकता है, (अ) कृषि यंत्रों की सहायता से सीधे ही फसल अवशेषों को मिट्टी में मिला कर तथा (ब) अवशेषों को सड़ा गला कर खाद के रूप में उपयोग करके।

फसल अवशेष प्रबंधन तकनीक

- अवशेषों को इकठ्ठा कर छोटे–छोटे टुकड़ों में काट कर यूरिया या कैल्शियम हाइड्राक्साइड से उपचारित करके या फिर प्रोटीन का संवर्धन कर पशुओं के चारे के रूप में उपयोग किया जा सकता है।
- स्ट्रा बेलर के प्रयोग से अवशेषों को ब्लाक बना कर छोटे स्थान पर भंडारित करके पशुओं को चारे के रूप में अथवा कारखानों में बिजली उत्पादन कर वैकल्पिक ऊर्जा के रूप में किया जा सकता है।
- रीपर के प्रयोग से भूसा बना कर रख सकते हैं।
- फसल अवशेषों का उपयोग कर मशरूम की खेती की जा सकती है।
- फसल अवशेषों की सहायता से गत्ता कागज बनाकर विभिन्न उपयोग में लाया जा सकता है।
- रोटावेटर की सहायता से अवशेषों को मिट्टी में मिला कर पानी लगा देने साथ ही 25–30 कि. ग्रा. यूरिया प्रति हेक्टेयर की दर से मिला देने पर सडन की प्रक्रिया तेज हो जाती है।
- गेहूं व धान की कटाई के उपरांत हैप्पी सीडर या सुपर सीडर मशीन की सहायता से अवशेषों के साथ ही अगली फसल की बोआई संभव है।
- अवशेषों को पलवार के रूप में प्रयोग किया जा सकता है, इससे खरपतवार के प्रकोप में कमी आती है साथ ही जल संरक्षण व मृदा संरक्षण में भी सहायक है।
- अवशेषों को इकट्ठा कर केंचुए की खाद, नाडेप खाद तथा सूक्ष्मजीव आधारित त्वरित कम्पोस्ट बनाई जा सकती है।

वर्मी कम्पोस्ट

वर्मी कम्पोस्ट या केंचुआ खाद केंचुआ व अन्य कार्बनिक पदार्थों जैसेः घरेलू कचरा, शहरी कचरा, कृषि अवशेष, खरपतवार, पशुओं का गोबर, छिलके जो सड़–गल सकें आदि के मिश्रण के पश्चात् केंचुओं से विसर्जित पदार्थ को वर्मी कम्पोस्ट कहते हैं। वर्मी कम्पोस्ट न सिर्फ केंचुओं द्वारा बल्कि कई सूक्ष्म जीवाणु, एक्टिनोमाइसिटिज, प्रोटोजोआ, फॅफूद आदि के द्वारा बनाया जाता है जो फसलों, सब्जियों, पौधों व वृक्षों की बढवार और रोगों से रक्षा के लिए पूर्ण रूप से प्राकृतिक एवं संतुलित खाद है। केंचुओं के पालन को वर्मी कल्चर कहते हैं। वर्मी कम्पोस्ट में नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश के अतिरिक्त पौधों की वृद्धि एवं विकास में सहायक अनेक लाभदायक सूक्ष्म तत्व एवं जीवाणु, हार्मोन (आक्सिन एवं साइटोकाइनिन) और अनेक एन्जाइम भी पाये जाते हैं। इसमें ह्यूमिक एसिड भी होता है, जो भूमि की लवणता को कम करता है। वर्मी कम्पोस्ट तैयार करने के लिए सतही केचुएं, जो मृदा कम कार्बनिक पदार्थ अधिक खाते हैं, प्रयोग किए जाते हैं। इन्हे एपीगीज के नाम से भी जाना जाता है। ये दो प्रकार के होते हैं (ब) एपिजाईक (सतह पर पाये जाने वाले) एवं

*कृषि विज्ञान केन्द्र, कोटवा, आजमगढ़, **वरिष्ठ प्रसार अधिकारी, प्रसार निदेशालय, आ०न० दे० कृषि एवं प्रौ० वि०वि०, कुमारगंज, अयोध्या

पोषण क्षमता

जीवांश कार्बन	20 — 25	प्रतिशत	मैगनिशियम	0.15	प्रतिशत
नत्रजन	1.2 — 2.5	प्रतिशत	लोहा (आयरन)	175.2	पी.पी.एम.
फास्फोरस	1.8 — 2.0	प्रतिशत	मैगनीज	96.51	पी.पी.एम.
पोटाश	0.5 —1.2	प्रतिशत	जिंक	24.43	पी.पी.एम.
कैल्शियम	0.44	प्रतिशत	कापर (तांबा)	4.89	पी.पी.एम

(ब) एनिसिक (सतह के अन्दर पाये जाने वाले)। इसेनिया फोटिडा एवं यूड्रिलस यूजेनी प्रजाति के केचुओं का प्रयोग कृषि अवशेष एवं गोबर से वर्मीकम्पोस्ट बनाने में अधिकतर किया जाता है। इसका वजन 0.3—0.9 ग्राम एवं लम्बाई 3 इंच होती है। इन्हें रेडवर्म भी कहते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रजातियां भी हैं, जो वर्मी कम्पोस्ट में प्रयोग की जाती है परन्तु ये लाल केंचुओं से कम प्रभावी हैं।

वर्मी कम्पोस्ट पिट बनाने की विधि

- खाद बनाने का कार्य गड्ढे, लकड़ी की पेटी, प्लास्टिक क्रेट या किसी प्रकार के कन्टेनर में किया जा सकता है। गड्ढे या पेटी की गहराई 1 मीटर से कम रखते हैं। लकड़ी या प्लास्टिक की पेटी में नीचे 8—10 छेद जल निकास हेतु बनाएं।
- 10 फीट लम्बा व 2 से 5 फीट चौड़ा तथा 1 से 5 फीट गहरा गढ्ढा उँचाई तथा छायादार जगह पर बना लें।
- सबसे निचली सतह पर 3—3.5 सेमी0 मोटी ईंट या पत्थर की गिट्टी बिछायें।
- गिट्टी की परत के ऊपर 3—3.5 सेमी0 मोरंग या बालू बिछायें।
- गिट्टी की परत के ऊपर 15 सेमी0 अच्छी दोमट मिट्टी की परत बनायें।
- इस मिट्टी को पानी छिड़ककर नम कर लें।
- इसके बाद एक किग्रा0 केंचुए (एपीजाईक तथा एनीसिक) बराबर की संख्या में डाल दें।
- नम मिट्टी के ऊपर गोबर के ढेर बनाकर रख दें।
- गोबर के ऊपर 5—10 सेमी0 पुआल/सूखी पत्तियाँ डाल दें।
- इस इकाई में बराबर 20—25 दिन तक पानी का छिड़काव करें।
- 26 दिन से प्रति सप्ताह दो बार लगभग 5—10 सेमी0 कचरे की तह बनायें तथा गोबर का ढेर बना कर रख दें। यह प्रक्रिया दोहराते रहे जब तक कि गड्ढा भर न जाय।
- इसे हफ्ते में एक बार पलटते रहें।
- इसमें रोज पानी का छिड़काव करें तथा जब गड्ढा भर जाय तो कचरा डालना बन्द कर दें।
- 80 से 85 दिन बाद जब वर्मी कम्पोस्ट बन जाये तो 2—3 दिन तक पानी का छिड़काव बन्द कर दें।
- इसके बाद खाद निकाल कर छाया में ढेर लगा दें और हल्का सूखने के बाद 2 मिमी0 छन्ने से छान लें। इस तैयार खाद में 20—25 प्रतिशत नमी होनी चाहिए।
- छनी हुई खाद को प्लास्टिक के थैले में आवश्यकतानुसार भर लें।

वर्मी कम्पोस्ट निकालने की विधि

- खाद निकालने के 2—3 दिन पूर्व पानी का छिड़काव बन्द कर दें, इससे केंचुए गड्ढे की तली में चले जायेगें।
- ऊपर से खाद को एक से दो दिन बाद हाथ से अलग कर लें या मोरंग चलाने वाले छन्ने से छान लें, तथा फर्श में नीचे पड़े केंचुओं को पुनः गड्ढ़े में डाल दें।
- खाद को निकाल कर फर्श या पालीथीन पर ढेर बना दें।
- छनी खाद को प्लास्टिक के थैलों में भर कर रखें।

प्रयोग विधि एवं मात्रा

वर्मी कम्पोस्ट को फसलों की बुआई या रोपाई से पूर्व और खड़ी फसल में डाल सकते हैं। खाद्यान फसलों में 5—6 टन प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें। 2.5 से 3 टन प्रति हेक्टेयर खेत की तैयारी के वक्त प्रयोग करें। 1. 2 से 1.5 टन प्रति हेक्टेयर फसल की दुग्धावस्था पर प्रयोग करें। फलदार वृक्षों में 1—10 किग्रा., आवश्यकतानुसार थाले में प्रयोग करें। गमलों में 100 ग्राम प्रति गमले की दर से प्रयोग करें। सब्जी फसलों में 10—12 टन प्रति हेक्टेयर प्रयोग करते है।

नाडेप कम्पोस्ट

आज के समय किसान के पास घटते पशुपालन और बढ़ते रसायनिक खादों व दवाओं के प्रयोग से जमींन की रसायनिक व भौतिक दशा खराब होती जा रही है, साथ ही साथ स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। ऐसी दशा में कम से कम गोबर का उपयोग कर अधिकाधिक मात्रा में खाद बनाने की यह एक सर्वोत्तम विधि है। इसलिए इस विधि से तैयार खाद को नाडेप कम्पोस्ट कहते हैं।

लाभ

- एक किलो गोबर से 30—40 किग्रा प्रभावशाली खाद तैयार होती है।

- गोबर की खाद की तुलना में दो गुना अधिक लाभदायक है।
- सरल तथा कम खर्चीली विधि है।
- तापक्रम अधिक हो जाने के कारण खरपतवारों के बीज नष्ट हो जाते हैं।
- पोषक तत्वों का प्रतिशत खाद में कार्वनिक पदार्थों द्वारा घटाया या बढ़ाया जा सकता है।
- आवश्यक कार्बनिक पदार्थों का सदुपयोग हो जाता है।

पोषण क्षमता

नत्रजन–0.5 से 1.5 प्रतिशत, फास्फोरस–0.5 से 1.0 प्रतिशत, पोटाश–1.2 से 1.4 प्रतिशत

बनाने की विधि

आवश्यक सामग्री

- ईंट, सीमेंट तथा बालू या मिट्टी से बना 12 X 5 X 3 फिट आकार का जालीदार ढ़ाचा
- कचरा (सूखा व हरा)–1400–1500 किलोग्राम
- गोबर या गैस स्लरी–90–100 किलोग्राम
- बारीक सूखी छनी मिट्टी–1800 किलोग्राम
- पानी– 1500–2000 लीटर (मौसम के अनुसार)

टैंक बनाने की विधि

1. 6 इंच गहरी नाली खोदें और 9 इंच मोटी दीवार की सहायता से 12 फीट लम्बा, 5 फीट चौड़ा व 3 फीट गहरा या ऊँचा टैंक बनाये।
2. प्रत्येक दो रद्दो के बाद तीसरे रद्दे की चुनाई के समय प्रत्येक ईंट के बाद 7 इंच का छेद छोड़ कर चुनाई कर दें।
3. छेद को इस प्रकार रखें कि पहली लाइन के दो छेदों के मध्य में दूसरी लाइन के छेद तथा दूसरी लाइन के छेदों के मध्य में तीसरी लाइन के छेद सामने आयें।
4. सबसे ऊपर के रद्दों को सीमेंट की सहायता से जोड़े ताकि ढ़ाचा या टैंक मजबूत बनें।
5. तैयार टैंक के अन्दर की दीवारों तथा फर्श को गोबर और मिट्टी के मिश्रण से लीप लें।
6. भली प्रकार सूखे टैंक को कम्पोस्ट बनाने में प्रयोग करते हैं।

टैंक भरने की विधि

प्रथम भराई

टैंक भरने के पूर्व अन्दर की दीवारों तथा फर्श को पानी एवं गोबर के घोल से गीला कर लें, फिर 4–6 इंच डंठल की परत बनायें।

पहली पर्त (वानस्पतिक पदार्थ)

4–6 इंच की ऊँचाई तक सूखा तथा हरा वानस्पतिक पदार्थ (60:40) भर दें। लगभग 100–120 किग्रा. सामग्री आयेगी। वानस्पतिक पदार्थ के साथ 3–4 प्रतिशत कड़वा नीम या पलाश की हरी पत्ती मिलाना लाभप्रद होगा। इससे दीमक का नियन्त्रण होगा।

दूसरी पर्त (गोबर का घोल)

100–150 लीटर पानी में 4 किलो गोबर घोलकर पहली पर्त पर इस प्रकार छिड़के कि पूरी वानस्पतिक अच्छी तरह भीग जाए। गर्मी के मौसम में पानी का अंश अधिक रखें। यदि गोबर गैस की स्लरी प्रयोग करें तो 10 किलो स्लरी को पानी में घोलें।

तीसरी पर्त (सूखी छनी मिट्टी)

भीगी हुई वानस्पतिक पदार्थ को मिट्टी की 2 इंच 50–60 किग्रा मिट्टी मोटी पर्त से ढक दें तथा थोड़ा सा पानी छिड़क दें।

ऊपर बतायी गई विधि के अनुसार लगातार पर्तें बनाकर ढांचे को अपनी ऊँचाई से 1.5 फीट ऊँचाई तक झोपड़ीनुमा आकार में भरतें जायें, साधारणतया 11 से 12 तह में टैंक भर जायेगा। अब भरे टैंक के ऊपर 2 इंच मोटी मिट्टी और गोबर के मिश्रण के लेप से पर्त बनाकर लीप दें।

द्वितीय भराई

20–25 दिन के बाद खाद सामग्री सिकुड़ कर टैंक के मुँह से 5–6 इंच नीचे बैठ जायेगी। अब पुनः पहली भराई की तरह वानस्पत्कि पदार्थ, गोबर घोल और मिट्टी की सहायता से टैंक को 1.5 फीट ऊँचा भर दें तथा गोबर व मिट्टी के मिश्रण से लीप कर सील कर दें।

कम्पोस्ट तैयार होने की अवधि तथा मात्रा प्रथम भराई की तारीख से 90 से 120 दिन बाद कम्पोस्ट बनकर तैयार हो जाती है। इस प्रकार टैंक से एक बार में लगभग 3–3.5 टन (30–35 कुन्तल) कम्पोस्ट तैयार हो जाता है। तैयार खाद भूरे रंग की दुर्गन्ध रहित सोंधी महक युक्त होती है।

खाद प्रयोग करने की मात्रा एवं विधि

3 से 5 टन प्रति एकड़ की दर से खाद को बुआई के 15 दिन पूर्व खेत में फैला दें और जुताई करके मिट्टी में मिला दें।

सावधानियां

- पूरे ढ़ाचें को 48 घंटे के अन्दर ही भरकर बन्द कर दें।
- लगातार नमी बनायें रखें तथा जाली की सहायता से आवश्यकतानुसार पानी का छिड़काव करें।
- टैंक को धूप से बचाने के लिए अस्थाई छप्पर या घास–फूस, द्वारा छाया कर दें।
- एक टैंक में 1000–1200 ईंट लगती हैं, यदि कुछ टुकड़ों का प्रयोग कर लें, तो लागत कम हो जाती है। अच्छा तो यह होगा कि पूरा टैंक सीमेंट, बालू, ईंट की सहायता से बनायें। यदि कच्चे गारे का प्रयोग करते हैं तो आखिरी रद्दा सीमेंट से बनायें।

- भराई के समय ध्यान रखें की टैंक में ईंट, पत्थर, काँच व पालीथीन न जाने पाये।
- टैंक की भराई के समय ऐसी कोई वानस्पतिक पदार्थ (ठोस) न डालें जो सड़ने में दिक्कत हो।
- यदि लागत और कम करनी हो तो बांस व लकड़ी की सहायता से भी टैंक बनाया जा सकता हैं।
- कम्पोस्ट की गुणवत्ता बढ़ाने के उपाय
- कम्पोस्ट में कार्बन, नत्रजन का अनुपात सही रखने के लिए सूखा भाग 60 तथा हरा भाग 40 के अनुपात में प्रयोग करें।
- दीमक के प्रकोप से बचाने के लिए नीम की पत्तियाँ या पलाश की हरी पत्तियों का टैंक भराई में प्रयोग करें।
- गौमूत्र से भीगा पुआल, घास, मिट्टी या अन्य खरपतवार का प्रयोग करने से खाद की गुणवत्ता बढ़ जाती है।
- गोबर गैस स्लरी को गोबर के स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है।
- टैंक की भराई के समय विभिन्न मिट्टी की परतों के उपर 2.0 किग्रा. जिप्सम, 2.0 किग्रा. राक फास्फेट, 2 किग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट, 1.5 किग्रा. यूरिया का मिश्रण बना कर 100–150 ग्राम प्रति परत प्रयोग करने से खाद की पोषक क्षमता में वृद्धि होती है।
- टैंक भरने के 75 से 80 दिन बाद, टैंक की ऊपरी सतह से नीचे की सतह तक बांस या सम्बल की सहायता से जगह– जगह पर छिद्र कर दिये जायें और इन छिद्रों में 500 ग्राम, पी.एस.बी., 500 ग्राम, एजेटोबैक्टर, 500 ग्राम राइजोबियम आदि को 23 ली0 पानी में घोलकर डाल दिया जाये तत्पश्चात् इन छिद्रों को बंद कर दिया जाये। इससे कम्पोस्ट की गुणवत्ता भी बढ़ेगी तथा इसके बनने की प्रक्रिया में तीव्रता आयेगी।

सूक्ष्मजीव आधारित त्वरित कम्पोस्टिंग

त्वरित कम्पोस्टिंग तकनीक में फसलों की कटाई मड़ाई के पश्चात् बचे कृषि अवशेषों सूखी पत्तियों व घरेलू जैविक कचरों आदि को इकठ्ठा कर उन पर सूक्ष्मजीव अनुकल्पों का प्रयोग करके अत्यंत कम समय में उच्च गुणवत्तायुक्त कम्पोस्ट खाद में परिवर्तित किया जाता है। तत्पश्चात् कम्पोस्ट में कुछ अन्य लाभकारी सूक्ष्मजीवों द्वारा गुणवत्ता संवर्धन भी कराया जाता है जिससे कि किसान बायो फोर्टीफाइड कम्पोस्ट का उत्पादन करके न केवल अपने खेती की लागत कम कर सकें बल्कि कम्पोस्ट की बिक्री करके अपनी आय भी बढ़ा सकें। इस तकनीक से फसल अवशेष प्रबंधन को एक नया आयाम देते हुए प्रदूषण को कम करते हुए मिट्टी में जीवांश कार्बन की मात्रा बढ़ाने का प्रयास किया जा सकता है। कम्पोस्ट के माध्यम से मिट्टी में लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ाकर पौधों की सही बढ़वार तथा स्वतः रोग व कीट प्रबंधन को बढ़ावा देते हुए खेती में रासायनिक खादों की मात्रा में 25–30 प्रतिशत की कमी लाई जा सकती है।

कृषि अवशेषों की त्वरित कम्पोस्टिंग तकनीक

भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद नई दिल्ली के अधीन संचालित राष्ट्रीय कृषि उपयोगी सूक्ष्मजीव ब्यूरो, कुसमौर, मऊ द्वारा फसल अवशेष जलाने से होने वाले पर्यावरण प्रदूषण को कम करने एवं मिट्टी के स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिये कुछ लाभकारी सूक्ष्मजीवों की पहचान की गयी है जो फसल अवशेष व जैविक कचरों का तीव्र अपघटन करके लगभग 60–65 दिनों में ही गुणवत्ता युक्त कम्पोस्ट खाद में बदल देते हैं। इस तकनीक में अपघटन के लिए कृषि अवशेष, ताजा गोबर, गुड़ (खराब गुड़ / शीरा / गन्ने का रस) तथा डीकम्पोजर को 8 : 1.0 : 0.1 : 0.1 के अनुपात में मिलाकर इसमें 50–55 प्रतिशत तक नमी बना कर छायेदार स्थान पर रखा जाता है। नमी को जांचने हेतु कृषि अवशेषों सहित मिश्रित सामग्री को हाथ में लेकर मुट्ठी की सहायता से दबाते हैं, यदि पानी न टपके और गोल संरचना बन जाये तो समझें कि मिश्रण अपघटन के लिए तैयार है। तत्पश्चात, इस मिश्रण को पोलीथीन बैग्स अथवा मोटे प्लास्टिक की बनी हुई (एचडीपीई) बायोकन्वर्सन इकाई में भराई कर देते हैं। यदि व्यावसायिक स्तर पर सूक्ष्मजीव आधारित कम्पोस्ट खाद का उत्पादन किया जाना है तो विंड रो कम्पोस्टिंग विधि से खुले स्थान पर भी कम्पोस्ट का निर्माण किया जा सकता है।

विंड रो कम्पोस्टिंग तकनीक

इस तकनीक में एक से डेढ़ महीने के अन्दर कृषि अवशेष (भूसा, पुआल व अन्य जैविक कचरा) को सूक्ष्मजीवों की सहायता से गुणवत्तायुक्त जैविक खाद में परिवर्तित किया जा सकता है। जैविक कम्पोस्ट बनाने के लिए सीमेंट अथवा ईंट के बने हुए एक साफ प्लेटफार्म का चयन करके प्रारंभ में कम से कम 3–4 कुंतल जैविक अवशेषों (भूसा, पुआल व अन्य जैविक कचरा) की व्यवस्था करते है क्योंकि इससे अवशेष होने पर ढेर का उचित तापमान बन पाता और जैविक उत्परिवर्तन की प्रक्रिया ठीक से पूरी नहीं हो पाती है। यदि व्यावसायिक स्तर पर कम्पोस्ट का निर्माण करना हो तो 20–25 टन कम्पोस्ट तैयार करने हेतु लगभग 18 X 12 वर्ग मी (60 X 40 वर्ग फीट) क्षेत्रफल के पक्के फर्श अथवा अथवा थोड़े बड़े माप की मोटी पालीथिन शीट की आवश्यकता पड़ती है। विपरीत वातावरणीय परिस्थितियों जैसे आंधी पानी, अधिक सर्दी आदि से बचने के लिए कम्पोस्ट के ढेर को प्लास्टिक शीट से ढकने की व्यवस्था होनी चाहिए। विंड रो कम्पोस्टिंग तकनीक में निम्न चरणों के अनुसार कम्पोस्ट खाद

तैयार करते हैं।

1. कम्पोस्टिंग के लिए चयनित फर्श अथवा पोलीथीन सतह को 2 प्रतिशत फार्मलीन के घोल से अच्छी प्रकार से निर्जलीकृत कर लेते हैं। अगले दिन कम से कम 3–4 कुंतल कृषि अवशेष (पुआल, भूसा आदि) फर्श पर फैला कर उस पर थोड़ा–थोड़ा पानी का छिड़काव करके नम कर लेते हैं। लगभग 50 – 55 प्रतिशत नमी बनाने में 24 से 48 घंटे का समय लग जाता है। यह काम थोड़ी सावधानी से करते हैं, क्योंकि कम या अधिक नमी हो जाने पर भी जैविक उत्परिवर्तन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

2. दूसरे दिन जब वांछित नमी हो जाये तब कृषि अवशेष गोबर गुड़ और डीकम्पोजर को 8:1.0:0.1:0.1 के अनुपात में मिलाकर एक ढेर तैयार किया जाता है, जिसकी ऊँचाई 150 सेमी व चौड़ाई 130 – 150 सेमी होनी चाहिये। ढेर को पालीथीन शीट से ढक कर किनारों को दबा कर पैक कर देते हैं।

3. ढेर को इसी तरह से 8 से 10 दिन तक छोड़ दिया जाता है, जिससे अन्दर का तापमान लगभग 60 डिग्री सेंटीग्रेड तक हो जाता है। यह तापमान अच्छे कम्पोस्ट उत्पादन के लिए उपयुक्त होता है। दसवें दिन पहली पलटाई करनी होती है, क्योंकि ढेर के अन्दर का तापमान 60 डिग्री सेंटीग्रेड के आस पास होने के कारण अन्दर का अपघटन तो ठीक से हो जाता है, परन्तु बाहर का तापमान कम होने के कारण अपघटन ठीक से नहीं हो पाता है। इसके लिए पहली पलटाई इस तरह से करते हैं कि बाहर की सामग्री अन्दर की ओर और अन्दर की बाहर हो जाए। नमी की मात्रा भी देख लेते हैं यदि कम है तो समुचित मात्रा में पानी का छिड़काव करते है।

4. पहली पलटाई के बाद ढेर का रंग सुनहरे पीले से गाढ़े पीले या भूरे रंग का हो जाता है। 20 वें दिन पहली की तरह ही दूसरी पलटाई करते हैं। पुनः 30 दिन बाद तीसरी पलटाई करते हैं तथा 40 वें दिन चौथी पलटाई करने के बाद ढेर को खोल देते हैं। कुछ घंटो तक कम्पोस्ट को खुला छोड़ने के बाद जब सड़न की कोई गंध न आये और सुगंध हो तथा नमी 22 से 25 प्रतिशत तक हो जाये तो समझना चाहिए कि कम्पोस्ट ठीक से तैयार हो गया है। अब इस कम्पोस्ट को खेतों में प्रयोग किया जा सकता है।

5. खेतों में ही फसलों के अवशेषों (खाद्यान्न, फसल, सब्जी, सूखी पत्तियां आदि) से कम्पोस्ट बनाकर उन्हीं खेतों में मिला देने से भूमि में पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण हो जाता है। इस विधि से तैयार कम्पोस्ट में ट्राइकोडर्मा, बैसिलस, व्युवेरिया आदि के अनुकल्प मिलाये जा सकते है, जिससे कि कम्पोस्ट का गुणवत्ता संवर्धन हो सके और बीज तथा फसल को विभिन्न कीट बीमारियों से सुरक्षित रखा जा सके।

कम्पोस्टिंग बैग तथा एचडीपीई कम्पोस्टिंग इकाई में कम्पोस्ट बनाने की विधि

कम मात्रा में उपलब्ध कृषि अवशेषों से कम्पोस्ट बनाने के लिए इस विधि का प्रयोग करते हैं। कम्पोस्ट बनाने की विधि विंड रो कम्पोस्टिंग की तरह ही होती है, धान का पुआल, गेहूं का भूसा, पेड़ों की सूखी पत्तियों आदि को इकठ्ठा करके उसमे 9:1 के अनुपात में गोबर में मिला कर उसमे डीकम्पोजर मिलाते हैं तथा नमी लगभग 50 – 60 प्रतिशत के आस पास रखते हैं। ढेर को बैग या कम्पोस्टिंग इकाईयों में भर लेते हैं और मोटे कपडे या जूट के बोरे से ढंक देते हैं। दूसरे दिन से ही तापमान बढ़ना शुरु हो जाता है, छोटे बैग में तापमान 45–55 डिग्री सेल्सियस तथा बायो कन्वर्जन इकाईयों में तापमान 55–65 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाता है। 12–15 दिन बाद ढेर की पलटाई करते हैं, जिससे कि आक्सीजन की सही मात्रा मिश्रण में बनी रहे। 27–30 दिनों के पश्चात् ढेर की पलटाई करके पुनः डीकम्पोजर का बुरकाव/छिड़काव करें। 60–70 दिनों के बाद कम्पोस्ट को सुखा कर 4 मिली मीटर साइज की छलनी से छान कर अलग कर लें। तैयार कम्पोस्ट की गुणवत्ता संवर्धन हेतु ट्राइकोडर्मा, बैसिलस, व्युवेरिया आदि के अनुकल्प मिलाये जा सकते है।

सूक्ष्मजीव आधारित कम्पोस्ट का उपयोग

सूक्ष्मजीव आधारित गुणवत्तायुक्त कम्पोस्ट का प्रयोग सभी प्रकार की फसलों यथा खाद्यान्न, दलहन, तिलहन, गन्ना, फल, सब्जी, फूल, लॉन व अन्य अलंकृत पौधों और उनकी नर्सरी के लिए कर सकते है।

1. साधारणतयः फसल प्रणाली में कम्पोस्ट 5 टन प्रति हेक्टेयर और वृक्ष रोपण में 1–10 कि०ग्रा० प्रति वर्ष प्रति वृक्ष के आधार पर उपयोग करने की संस्तुति दी जाती है। कम्पोस्ट को खेत में बोआई के पहले बिखेर कर जुताई करके भूमि में मिला देना चाहिए।
2. कम्पोस्ट और मिट्टी को 1:3 के अनुपात में मिलाकर गमले में प्रयोग कर सकते है।
3. फलदार वृक्षों में 200–500 ग्राम प्रति पौधा तथा घास के लॉन में 3 कि०ग्रा० प्रति 10 वर्ग मीटर की दर से प्रयोग करें।
4. सूक्ष्मजीव आधारित कम्पोस्ट मिट्टी के खनिज तत्वों का अपघटन कर पौधों के विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध कराने में मदद करता है।

सावधानियां

- कम्पोस्टिंग की प्रक्रिया प्रारंभ होने के 2–3 दिनों बाद ढेर का तापमान बढ़ने लगता है, इसे ध्यान से जांचना चाहिए और यदि तापमान नहीं बढ़ रहा है तो प्रक्रिया में कहीं न कहीं कमी रह गयी है।
- कम्पोस्ट में पानी की मात्रा केवल उतनी होनी चाहिए, जिससे कि कम्पोस्ट को हाथ में रख कर

गोला बनायें तो ठीक से बन जाये।

- अच्छे कम्पोस्ट में पॉलिथीन, कांच, कील आदि न सड़ने गलने वाले वस्तु नहीं होने चाहिए।
- पूरी तरह सड़ा हुआ कम्पोस्ट ही खेतों में प्रयोग करना चाहिए, अधसड़ा कम्पोस्ट डालने से हानि हो सकती है।

अच्छी कम्पोस्ट बदबू रहित होती है जिसका पी एच मान 6.5 से 7.5 के बीच होता है तथा कार्बन : नत्रजन का अनुपात 20:1 तथा नमी 15 से 25 प्रतिशत के बीच होना चाहिए। मिट्टी में कम्पोस्ट का प्रयोग करने से आर्गेनिक कार्बन का निर्माण होता है और इससे मिट्टी के अन्दर हवा पानी का संचार बढ़ जाता है। पौधों की जड़े गहराई तक जाती हैं और अधिक पोषक प्राप्त कर अच्छा उत्पादन देते हैं। कम्पोस्ट की गुणवत्ता बढाने के लिए इसमें लाभदायक सूक्ष्मजीवों (नाइट्रोजन स्थिरीकरण वाले जीवाणु, फास्फोरस घुलनशील जीवाणु, पोटाश घुलनशील जीवाणु) तथा जैव फफूंदनाशी/कीटनाशी ट्राईकोडर्मा तथा व्युवेरिया बैसियाना को अलग से मिला सकते हैं।

विगत वर्षों में रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के अविवेकपूर्ण प्रयोग से एक ओर जहाँ हमारा पर्यावरण दूषित हुआ है वहीं दूसरी ओर कृषि उत्पादों की गुणवत्ता में कमी आ रही है। ऐसी स्थिति में कम्पोस्ट के प्रयोग को बढ़ावा देकर न केवल मिट्टी की सेहत में सुधार लाते हुए पर्यावरण को सुरक्षित रखा जा सकता है बल्कि कृषि अवशेषों के बेहतर उपयोग से गुणवत्तायुक्त खाद का उत्पादन एवं बिक्री करके उद्यमिता विकास भी किया जा सकता है।

(पृष्ठ 02 का शेष)

6. फूलों को ताजा रखने के लिए 8 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान तथा 80 प्रतिशत आर्द्रता सर्वोत्तम है।

7. कट फलावर के रूप में इस्तेमाल किए जाने वाले फूलों के पात्र में 4 चम्मच चीनी मिला देने से फूल अधिक समय तक रखा जा सकता है।

पैकिंगः ताजा तोड़े हुए फूलों को पॉलीथीन के लिफाफों, बांस की टोकरियों या थेलों में अच्छी तरह से पैक करके तुरंत मण्डी भेजें।

उपजः अफ्रीकन गेंदें से 20–22 टन ताजा फूल तथा फ्रेंच गेंदे से 10–12 टन ताजा फल प्रति हैक्टेयर औसत उपज प्राप्त होती है।

कीट एवं व्याधियां

रेड स्पाइडर माइट : यह बहुत ही व्यापक कीड़ा है। यह गेंदे की पत्तियों एवं तने के कोमल भाग से रस चूसता है। इसके नियंत्रण के लिए 0.2 प्रतिशत मैलाथियान या 0.2 प्रतिशत मेटासिस्टॉक्स का छिड़काव करें।

चेपाः ये कीड़े हरे रंग के, जूं की तरह होते हैं और पत्तियों की निचली सतह से रस चूसकर काफी हानि पहुँचाते हैं। चेपा विषाणु रोग भी फैलाता है। इसकी रोकथाम के लिए 300 मि.ली. इमिडाक्सोप्रिड या 300 ग्राम ऐसीटाभ्प्रिड को 200–300 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें, यदि आवश्यकता हो तो अगला छिड़काव 15–20 दिन के अंतराल पर करें।

व्याधियां व रोकथाम

आर्द्र गलन : यह बीमारी नर्सरी में पौध तैयार करते समय आती है। इसमें पौधे का तना गलने लगता है। इसकी रोकथाम के लिए 0.2 प्रतिशत कैप्टान या कार्बेन्डाजिम के घोल की डेचिंग करें।

पत्तों का धब्बा व झुलसा रोग : इस रोग से ग्रस्त पौधों की पत्तियों के निचले भाग पर भूरे रंग के धब्बे हो जाते हैं जिसकी वजह से पौधों की बढ़ावर प्रभावित होती है। इसकी रोकथाम के लिए डायथेन एम. के 0.2 प्रतिशत घोल का 15–20 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

पाउडरी मिल्डयूः पत्तियों के दोनों तरफ व तने पर सफेद चूर्ण तथा चकत्ते दिखाई देते हैं। जिसकी वजह से पौधा मरने लगता है। इसकी रोकथाम के लिए घुलनशील सलल्फर (सल्फैक्स) एक लीटर या कैराथेन 40 इ.सी. 450 मि.ली. प्रति हैक्टेयर के हिसाब से 500 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

अनुमानित लागत एवं आय (एक हेक्टेयर हेतु)

एक हेक्टेयर क्षेत्र फल में गेंदा की खेती करने से फूलों को बाजार में बेचने तक औसतन लगभग रू. 100000.00 की लागत लगती है। कुल आय लगभग रु. 250000.00 तक हो सकती है। इस प्रकार शुद्ध आय (कुल आय–अनुमानित लागत – शुद्ध आय) लगभग रु. 150000.00 तक हो सकती है, इस प्रकार गेंदे की फसल से कृषक आय में बढ़ोत्तरी की जा सकती है।

मूँग की वैज्ञानिक खेती

उमेश बाबू,* राम भरोसे** एवं विनय कुमार***

मूँग भारत व दक्षिण पूर्व एशिया की एक खास फसल है। इसमें प्रोटीन बहुत मात्रा में पाया जाता है। इसके अलावा इस में कार्बोहाइड्रेट, खनिज तत्त्व व विटामिन भी होते हैं। कम समय में ही पकने के कारण इसे बहुफसली चक्र में आसानी से रखा जा सकता है। मूँग की फसल से फलियों की तोड़ाई के बाद पौधों को खेत में मिट्टी पलटने वाले हल से पलट कर मिट्टी में दबा देने से यह हरी खाद का काम करती है। मूँग की खेती करने से मिट्टी की ताकत में भी इजाफा होता है।

मूँग को खरीफ, रबी व जायद तीनों मौसमों में आसानी से उगाया जा सकता है। उत्तरी भारत में इसे बारिश व गरमी के मौसम में उगाते हैं। दक्षिणी भारत में मूँग को रबी मौसम में उगाते हैं। इस फसल के लिए ज्यादा बारिश नुकसानदायक होती है। ऐसे इलाके, जहां पर 60 से 75 सेंटीमीटर तक सालाना बारिश होती है, मूँग की खेती के लिए उपयुक्त हैं। मूँग की फसल के लिए गरम जलवायु की जरूरत पड़ती है। इस की खेती समुद्र तल से 2000 मीटर की ऊंचाई तक की जा सकती है। पौधों पर फलियां लगते समय और फलियां पकते समय सूखा मौसम व ऊंचा तापमान बहुत ज्यादा फायदेमंद होता है।

भूमि– मूँग एक दाल वाली फसल है, जो कम समय में पक कर तैयार हो जाती है। सिंचाई व बिना सिंचाई दोनों रकबों में इस की खेती आसानी से की जा सकती है। इस की सफलतापूर्वक खेती के लिए अच्छी जल निकासी वाली बलुई दोमट जमीन सब से उपयुक्त मानी गई है। उत्तरी भारत में अच्छी जल निकासी वाली दोमट मटियार मिट्टी और दक्षिणी भारत के लिए लाल मिट्टी उपयुक्त है।

भूमि की तैयारी–बारिश शुरू होने के बाद खेत में 1 बार मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई कर के 2 से 3 बार कल्टीवेटर या देशी हल से जुताई करनी चाहिए और पाटा चला कर खेत को बराबर बना लेना चाहिए। खेत से खरपतवार व पुरानी फसल के ठूठों को बाहर निकाल देना चाहिए। आखिरी जुताई के समय खेत में गोबर या कंपोस्ट खाद 50 क्विंटल प्रति हेक्टयर की दर से मिट्टी में मिला देनी चाहिए। दीमक से बचाव के लिए क्लोरोपायरीफॉस 15 प्रतिशत चूर्ण 20 किलोग्राम प्रति हेक्टयर की दर से खेत की तैयारी के समय मिट्टी में मिलाना फायदेमंद होगा।

मूँग की प्रजातियों का चयन – प्रजातियों का चुनाव करने से उत्पादन में हर हाल में इजाफा होगा। मौसम के मुताबिक उपयुक्त प्रजातियां नीचे दी गई हैं।

रबी के लिए रू वसुधा, सूर्या, हीरा, नरेन्द्र मूँग 1, टाइप 1, पंत मूँग 8, आई०पी.एम० 2–3, आई०पी.एम० 2–14, एचयूएम 6, सुनैना और जवाहर मूँग 70।

खरीफ के लिए – आई०पी.एम० 302–2, आई०पी. एम० 2–3, आई०पी.एम० 2–14, पूसा विशाल, मालवीय ज्योति, एमएल 5, जवाहर मूँग 45, अमृत, पीडीएम 11 और टाइप 51।

रबी, खरीफ एवं जायद मौसमों के लिए – वसुधा, सूर्या, हीरा, आई०पी.एम० 2–3, आई०पी.एम० 302–2, पंत मूँग–8, पूसा विशाल, के 851 और शालीमार मूँग–2।

बीज की मात्रा – खरीफ मौसम में 12 से 15 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टयर की दर से प्रयोग करें और बोआई कतारों में 30 से 40 सेंटीमीटर की दूरी पर करनी चाहिए। रबी व गरमी के मौसम में मूँग के लिए बीज दर 20–25 किलोग्राम प्रति हेक्टयर रखनी चाहिए और बोआई कतारों में 20 से 25 सेंटीमीटर की दूरी पर करनी चाहिए।

खाद व उर्वरक –मूँग एक दाल वाली फसल है, इसलिए इस में ज्यादा नाइट्रोजन की जरूरत नहीं पड़ती है, फिर भी 20 किलोग्राम नाइट्रोजन, 50 किलोग्राम फास्फोरस व 20 किलोग्राम पोटाश की मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से बोआई के समय देना फायदेमंद होगा। गंधक की कमी वाले रकबों में गंधकयुक्त उर्वरक 20 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर के हिसाब से देना चाहिए। सभी चारों तरह के उर्वरकों की पूरी मात्रा बोआई से पहले या बोआई के समय ही देनी चाहिए। यदि संभव हो तो हर तीसरे साल में 1 बार 10 से 15 क्विंटल अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद आखिरी जुताई के समय प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में डालनी चाहिए।

---

*विषय वस्तु विशेषज्ञ (जी.पी.बी.), **विषय वस्तु विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान), ***प्रभारी केवीके, आ०न० दे० कृषि एवं प्रौ० वि०वि०, कुमारगंज, अयोध्या

सिंचाई व जल निकास – खरीफ में मूँग की फसल को सिंचाई की जरूरत नहीं पड़ती है, लेकिन फूल आने की दशा में सिंचाई करने से उपज में काफी इजाफा होता है। अधिक बारिश की दशा में खेत से पानी निकालना बेहद जरूरी होता है। पानी न निकालने से पौधगलन रोग हो जाता है, जिस से फसल को भारी नुकसान होता है। गरमी में मूँग की फसल में खरीफ की तुलना में पानी की ज्यादा जरूरत होती है। गर्मी के मौसम में 10 से 15 दिनों के अंतर पर 4 से 6 सिंचाई करनी चाहिए। ज्यादा गर्मी होने पर सिंचाई का अंतर 8 से 10 दिनों का रखना चाहिए।

निराई गुडाई व खरपतवार नियंत्रण – बोआई के 15 से 20 दिनों बाद पहली और 40 से 45 दिनों बाद दूसरी निराई करनी चाहिए। घास व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को रासायनिक विधि द्वारा खत्म करने के लिए फ्लूक्लोरिलिन 45 ईसी की 2 लीटर मात्रा 800 से 1000 लीटर पानी में घोल कर बोआई से पहले खेत में छिड़काव करें। बोआई के बाद बीज जमने से पहले पेंडिमेथिलीन 30 ईसी की 3.3 लीटर मात्रा 800 से 1000 लीटर पानी में घोल कर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें। फसल की बुवाई के 15–18 दिन पर इमिजा व्यायपर खरपतवारनाशी की 1 किग्रा की यूनिट को 800 से 1000 लीटर पानी में घोलकर स्प्रे करें।

बुवाई का समय व तरीका: जायद मूँग की बोआई जहां सिंचाई की सुविधा हो वहां फरवरी में ही कर देनी चाहिए। खरीफ मौसम में मूँग की बोआई मानसून आने पर जून के दूसरे पखवाड़े से जुलाई के पहले पखवाड़े के बीच करनी चाहिए। उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, बिहार व पश्चिम बंगाल में मूँग की खेती गर्मी के मौसम में की जाती है। इन राज्यों में मूँग को गन्ना गेहूं, आलू आदि की कटाई के बाद बोते हैं। मूँग की बोआई कतारों में करनी चाहिए। 2 कतारों के बीच की दूरी 30 से 45 सेंटीमीटर रखनी चाहिए। बीजों को 4 से 5 सेंटीमीटर की गहराई पर बोना चाहिए। मूँग के बीजों को पहले कार्बेंडाजिम से उपचारित करने के बाद ही बोना चाहिए।

कीट प्रबंधन– काला लाही माहूँ: नए पौधे से फली निकलने की दशा में इस कीट के शिशु व वयस्क पौधों की पत्तियों पर पाए जाते हैं। ये बसंतकालीन फसल की मुलायम टहनियों, फूलों व कच्ची फलियों से रस चूसते हैं।

रोकथामः माहूँ का प्रकोप होने पर पीले चिपचिपे ट्रैप का इस्तेमाल करें, ताकि माहूँ ट्रैप पर चिपक कर मर जाएं। परभक्षी काक्सीनेलिड्स या सिरफिड या क्राइसोपरला कार्नियया का संरक्षण कर के 50000–100000 अंडे या सूंड़ियां प्रति हेक्टेयर की दर से छोड़ें नीम का अर्क 5 फीसदी या 1.25 लीटर नीम का तेल 100 लीटर पानी में मिला कर छिड़कें। बीटी का 1 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए। इसके बावजूद रोकथाम न हो तो मेटासिस्टाक्स 25 ईसी या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल या थायोमेक्जाम 25 ईसी 1 मिलीमीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिड़कें।

हरा फुदका (जैसिड): फसल की शुरुआती दशा से ले कर पौधों की पत्तियां व फलियाँ निकलने तक इस के शिशु व वयस्क हमला कर के रस चूसते हैं। रोगी पौधों की बढ़वार सामान्य से काफी कम हो जाती है।

रोकथाम – अकेली फसल की बजाय मिश्रित खेती करनी चाहिए। खासकर ज्यादा लंबाई वाली फसलों जैसे गन्ना, ज्वार व सूरजमुखी आदि में से किसी एक को मूँग के साथ 6:1 या 6:2 के अनुपात में लगाना चाहिए। इस से रोशनी पसंद करने वाले हरा फुदका जैसे कीड़ों की संख्या पर बहुत हद तक नियंत्रण हो जाता है। इस के बाद भी रोकथाम न हो तो मेटासिस्टाक्स 25 ईसी या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल या थायोमेक्जाम 25 ईसी 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिड़कें।

सफेद मक्खी –इस इस कीट के द्वारा फसल को कई तरह से नुकसान पहुंचाया जाता है। यह पौधों से रस चूसती है और पत्तियों पर स्रावित मधु छोड़ती है। द्रव पर काला चूर्णी फफूंदी (शूटी मोल्ड) के पनपने व फैलने से प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में रुकावट होती?है और पीला चितकबरा रोग (पीला मोजैक) के विषाणु तेजी से फैलते हैं। रोगी फसल पूरी तरह से बरबाद हो जाती है।

रोकथाम – सफेद मक्खी से बचाव के लिए बोआई से 24 घंटे पहले इमिडाक्लोरोपिड कीटनाशी रसायन से 4.0 मिलीलीटर प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करना चाहिए। शुद्ध फसल के बजाय मिश्रित खेती करना ज्यादा लाभप्रद है। खासकर ज्यादा लंबाई वाली फसलों जैसे गन्ना, ज्वार व सूरजमुखी वगैरह में से किसी 1 को मूँग के साथ 6:1 या 6:2 अनुपात से लगाने से रोशनी पसंद करने वाले

सफेद मक्खी जैसे कीड़ों की संख्या पर बहुत हद तक नियंत्रण हो पाता है। पीला मोजैक रोग के विषाणु को फैलाने वाली सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए मिथाइल डेमीटान (मेटासिस्टाक्स) 25 ईसी का 625 मिलीलीटर या मैलाथियान 50 ईसी या डायमेथोएट 30 ईसी का 1 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से जरूरत के मुताबिक छिड़काव करना चाहिए।

थ्रिप्स – मूँग की फसल पर फूल की दशा में गर्मी में मुलायम कलियों पर थ्रिप्स कीटों का हमला होता है। ये फूलों को बहुत नुकसान पहुंचाते हैं। मूँग की फलियों पर भी थ्रिप्स कीटों का प्रकोप होता है और उन में दाने विकसित नहीं हो पाते। सभी रस चूसक कीटों में थ्रिप्स सब से ज्यादा हानिकारक है।

रोकथाम – थ्रिप्स की रोकथाम करने के लिए फूल खिलने से पहले ही मैलाथियान 50 ईसी का 1 लीटर प्रति हेक्टेयर या मेटासिस्टाक्स 25 ईसी का 700 मिलीलीटर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

नीली तितली – फूल व फली की दशा में इसके पिल्लू मुलायम कलियों व फूलों पर हमला करते हैं। ये फलियों में छेद बना कर घुस जाते हैं व अंदर के ऊतक को खाते हैं। ये फलियों के अंदर विकसित हो रहे दानों को विशेष रूप से नुकसान
पहुंचाते हैं।

रोकथाम –फली बेधक नीली तितली की रोकथाम के लिए निबौली (सूखा हुआ नीम बीज) के चूर्ण को पानी में घोल (5.0 प्रतिशत) कर फूल निकलने के साथ छिड़काव करना चाहिए। यदि फली बेधक तितली की संख्या काफी अधिक हो जाए तो फली बनने की शुरुआती अवस्था में मैलाथियान 50 ईसी का 1.0 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

प्रमुख रोग एवं प्रबंधन– पीली चितेरी रोग (येलो मोजेक): मूँग का पीला चितेरी रोग विषाणु द्वारा पैदा होने वाला सब से खतरनाक रोग है। यह विषाणु बीज व छूने से फैलता है। पीली चितेरी रोग सफेद मक्खी (बेमिसिया टैबेसाई) जो एक रस चूसक कीट के द्वारा फैलता है। रोग से प्रभावित पौधे देर से पनपते हैं। इन पौधों में फूल और फलियां स्वस्थ पौधों के मुकाबले बहुत ही कम लगती हैं।

रोकथाम – बोआई के लिए रोग रोधी व उन्नत प्रजातियों एसएमएल 668, नरेंद्र मूँग 1 पीडीएम 11 पीडीएम 84–139 (सम्राट), पीडीएम 84–143 (बसंती), पीडीएम 54 (मोती), मेहा, पूसा विशाल, एचयूएम 16 आदि का चयन करें। सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए मेटासिस्टाक्स या मैलाथियान का छिड़काव करना चाहिए।

झुर्रीदार पत्ती रोग (लीफ क्रिंकल) –यह रोग 'उर्द बीन लीफ क्रिंकल विषाणु' द्वारा होता है। रोग का फैलाव पौधे के रस (सैप) व बीज से होता है। यह खेत में लाही (माहूँ) व अन्य कीटों द्वारा भी फैलता है। इस विषाणु के संक्रमण से फूल कलिकाओं में पराग कण बांझ हो जाते हैं, जिससे रोगी पौधों में फलियां कम लगती हैं।

फसल पकने के समय तक भी रोगी पौधे हरे ही रहते हैं। इस रोग के साथसाथ पौधे पीली चितेरी रोग से भी संक्रमित हो सकते हैं।

रोकथाम – बोआई के लिए रोग रोधी व उन्नत प्रजातियों का चयन करना चाहिए। सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए फसल पर मेटासिस्टाक्स या मैलाथियान या डामेथोएट या मोनोक्रोटोफास (0.04 फीसदी) का छिड़काव करना चाहिए।

सर्कोस्पोरा पत्र बुंदकी रोग: यह 'सर्कोस्पोरा' नामक प्रजातियों द्वारा होता है। इस रोग के लक्षण पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बों के रूप में प्रकट होते हैं। धब्बों का बाहरी भाग भूरे रंग का होता है। ये धब्बे पौधों की शाखाओं व फलियों पर भी बन जाते हैं। अनुकूल वातावरण में ये धब्बे बड़े आकार के हो जाते हैं। फूल आने व फलियां बनने के समय रोगी पत्तियां गिर जाती हैं। रोग पैदा करने वाले कवक बीज व रोग ग्रसित पौधों के मलवे पर भूमि में जीवित रहते हैं।

रोकथाम – बोआई से पहले बीजों को कवकनाशी कार्बाडेंजिम 2 ग्राम या थीरम 2–5 ग्राम से प्रति किलोग्राम की दर से उपचारित करना चाहिए। फसल पर रोग के लक्षण दिखाई पड़ते ही कार्बेडाजीम (0.1 प्रतिशत) या मैंकोजेब (0.2 प्रतिशत) कवकनाशी के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

चूर्णी फफूंदी रोग –यह रोग इरीसिफी पोलीगोनाई नामक कवक द्वारा होता है। गरम व सूखे वातावरण में यह रोग तेजी से फैलता है। इस रोग में पौधों की पत्तियों, तनों व फलियों पर सफेद चूर्णी धब्बे दिखाई

(शेष पृष्ठ 13 पर)

सूरजमुखी की वैज्ञानिक खेती

सर्वजीत,* प्रदीप कुमार** एवं ओम प्रकाश***

सूरजमुखी की खेती तिलहनी फसल के रुप में खरीफ रबी एवं जायद तीनों मौसम में उगाई जाने वाली फसल है। इसका तेल खाने और औषधीय रुप में प्रयोग करते हैं। इसके बीजो में कैल्शियम, प्रोटीन विटामिन और कई अन्य पौष्टिक तत्त्व पाए जाते हैं सूरजमुखी के बीजों /तेल को खाने से हार्टअटैक का खतरा कम रहता है। दिल को स्वस्थ रखने से लेकर यह कैंसर जैसी बीमारी से बचाव करता है। इसके अतिरिक्त सूरजमुखी का तेल लीवर की बीमारियों को कम करता है और हड्डियों की बीमारी को भी दूर करता है। इसके बीज न केवल स्वादिष्ट होते हैं। बल्कि पौष्टिक भी होते हैं। इसके खली को पशुओं को खिलाने में प्रयोग करते हैं। खरीफ में सूरजमुखी पर अनेक रोग एवं कीटों का प्रकोप होता है। इसलिए जायद में सूरजमुखी की खेती से आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

विश्व में करीब 20 मिलियन हे0 क्षेत्रफल में सूरजमुखी की खेती की जाती है। इससे कुल उत्पादन 2 मिलियन टंन होता है। सूरजमुखी के प्रमुख उत्पादक राज्य कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार और उड़ीसा हैं। भारत में सूरजमुखी की खेती लगभग .48 मिलियन हेक्टेयर में की जाती है। जिसकी औसत उपज 0.6 मीट्रिक टन/एकड है। लगभग 80 प्रतिशत क्षेत्रफल वर्षा आधारित कृषि के अधीन है।

जलवायुः सूरजमुखी समशीतोष्ण तथा शीतोष्ण जलवायु का पौधा होता है। फसल पकते समय शुष्क जलवायु की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए उपयुक्त तापमान 20–25 डिग्री सेंटीग्रेड की आवश्यकता होती है।

भूमिः सूरजमुखी की खेती सभी प्रकार की भूमियों में की जा सकती है। अम्लीय एवं क्षारीय भूमि को छोड़कर सिंचित दशा वाली दोमट भूमि उपयुक्त होती है।

खेत की तैयारीः जायद के मौसम में पर्याप्त नमी न होने पर खेत को पलेवा करके जुताई करनी चाहिए। एक जुताई मिट्टी पलट हल से तथा बाद में 2–3 जुताई देशी हल या कल्टीवेटर से करनी चाहिए जिससे मिट्टी भुरभुरी हो जाए।

प्रजातियाँः प्रजातियाँ दो प्रकार की होती हैं।

संकुलः मार्डन, सूर्या, ज्वालामुखी, सनजीन–85, पी.एस.एफ़.एच.–8,पी.एस.एच. –569, डी.आर.एस.एफ़ –108

हाइब्रिडः के.बी.एस.एच.–1, बी.एस.एच.–17, एम.एस.एफ़.एच.–7, ए.पी.एस.एच.–1, एम. एस.एफ़.एच. –8,एम.एस.एफ़.एच.–1) .एस.एच. –3322.पी.एस.एच. 2080, डी.एस.एफ.एच.–3, के.बी.एस.एच. –78, एन.एस.एफ़.एच.–36, ऐल.एस.एच.–3, वी.एस.एफ़–1)

बुवाई का समय एव विधिः जायद में सूरजमुखी की बुवाई का सर्वोत्तम समय फरवरी का दूसरा पखवाड़ा है। इस समय बुवाई करने पर फसल मई के अन्त तक या जून के प्रथम सप्ताह तक तैयार हो जाती है। बुवाई देर से करने पर पकते समय वर्षा आरम्भ हो जाती है और पैदावार घट जाती है। बुवाई हमेशा पंक्ति में करनी चाहिए। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 सेमी तथा पौधे से पौधे की दूरी 45 सेमी व बीज की बुवाई 4–5 सेमी की गहराई पर करनी चाहिए।

बीज दरः बीज की मात्रा सामान्य प्रजातियों में 42–45 किग्रा/हे0 संकर प्रजातियों में 6–7 किग्रा/हे0 बीज लगता है। बीजो को बुवाई से पहले 20–25 ग्रा0 थीरम/ किग्रा के दर से उपचारित करना चाहिए बीज को बुवाई से पहले 42 घंटे भिगोकर सुबह 3–4 घंटे छाया में सुखाकर 3 बजे के बाद बुवाई करते हैं। इससे जमाव शीघ्र होता है। बुवाई से पहले बीज उपचार बहुत ही आवश्यक है। सूरजमुखी के खेत में प्रति हे0 में 60–65 हजार पौधे रखते हैं।

उर्वरक प्रयोगः सामान्यतः उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर ही करना चाहिए। संकुल प्रजातियों में 80 किग्रा तथा संकर प्रजातियों में 400 किग्रा नाइट्रोजन, 60 किग्रा फास्फोरस व 40 किग्रा पोटाश प्रति हे0 पर्याप्त होता है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा एवं फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय कूड़ों में प्रयोग करना चाहिए। शेष नाइट्रोजन

*विषय वस्तु विशेषज्– बीज विज्ञान, **फसल सुरक्षा एवं ***वरिष्ठ वैज्ञानिक एंव अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केंद्र सोहना, सिद्धार्थनगर
आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज अयोध्या– 224229

की मात्रा बुवाई के 25 – 30 दिन बाद खड़ी फसल में देनी चाहिए। यदि 3 – 4 टन हे0 गोबर की सड़ी हुई खाद प्रयोग की जाये तों उपज आधिक प्राप्त होती है।

सिंचाईः जायद में अच्छी पैदावार लेने के लिए 4–5 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। भारी भूमि में 3– 4 सिंचाई करनी चाहिए। पहली सिंचाई बोने के 20–25 दिन बाद करनी चाहिए। फूल आते समय एवं दाना भरते समय भूमि से नमी की कमी नहीं होनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रणः निराई गुड़ाई करके खरपतवार नियंत्रण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त पेन्डिमेथेलीन 30 प्रतिशत की 3.3 ली0 मात्रा प्रति हे0 के हिसाब से 500–700 ली0 पानी में घोलकर बुवाई के बाद 2–3 दिन के अन्दर छिड़काव करना चाहिए।

मिट्टी चढ़ानाः खड़ी फसल में नाइट्रोजन की टाप ड्रेसिग करने के बाद पौधों पर 40–5 सेमी मिट्टी चढ़ा देना चाहिए।

फसल सुरक्षाः सूरजमुखी में कई प्रकार के कीट लगते हैं, जैसे दीमक हरे फुदके डस्की वग फली बेधक दीमक के नियंत्रण हेतु 25 किग्रा व्यूवेरिया वैसियाना को लगभग 70 किग्रा गोबर की खाद में मिलाकर एक सप्ताह छाया में फैलाने के बाद प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें। इसके अतिरिक्त सिंचाई के पानी के साथ क्लोरोपाइरीफास 20 एस.सी. 2–3 ली0 /हे0 की दर से प्रयोग करना चाहिए। हरे फुदके के नियंत्रण हेतु नीम आयल 2.50 ली0 अथवा इमिडाक्लोप्रिड 250 मिली की दर से 800 ली0 पानी के साथ छिड़काव करें। डस्की बग के नियंत्रण हेतु हरें फुदकों के लिए संस्तुत, रसायन प्रभावी होते हैं। फली बेधक के नियंत्रण हेतु क्यूनालफास 25 प्रतिशत ई.सी. 2.0 ली0 प्रति हे0 की दर से 800 ली0 पानी में घोलकर सायंकाल छिड़काव करें।

रोंग नियत्रणः सूरजमुखी की फसल में डाउनी मिल्डयू, हेड राट, पत्ती झुलसा रोग लगते हैं। पत्ती झुलसा रोग के नियंत्रण हेतु मैन्कोजेब 3 ग्राम प्रति ली0 पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

फसल कटाईः सूरजमुखी की फसल तब न काटे जब बीज पक कर कड़े न हो जाए, पत्ते सूख जायें फूल का पिछला भाग पीला हो जाए फूल की पंखुडियाँ झड़ जायें तो फसल तैयार समझना चहिए। इस समय फूल काटकर 3–4 दिन खलिहान में सुखाने के बाद डंडे से पीटकर बीज निकाल लेना चाहिए। फूलों का कभी ढेर नही लगाना चाहिए। सूरजमुखी की फसल को तैयार होने में लगभग 90–95 दिन का समय लगता है।

उपज एवं भण्डारणः संकुल प्रजातियों की औसत उपज 22–25 कुन्तल हे0 तथा संकर प्रजातियों की उपज 30–40 कुन्तल हे0 प्राप्त होती है। बीज निकालने के बाद अच्छी तरह सुखा लेना चाहिए। बीज में 8–10 प्रतिशत से अधिक नमी नही होनी चाहिए। बीजों से 3 माह के अन्दर तेल निकाल लेना चाहिए, नही तो तेल में कड़वाहट आ जाती है।

(पृष्ठ 11 का शेष)

देते हैं। ये धब्बे बाद में मटमैले रंग के हो जाते हैं। रोग के ज्यादा होने से पत्तियां पूरी बनने से पहले सूख जाती हैं। रोगजनक क्लीस्टोथीसिया पौधों के अवशेष पर जीवित रहता है।

रोकथाम– फसल पर रोग के लक्षण दिखाई पड़ते ही कार्बेंडाजीम की 1 ग्राम या सल्फेक्स 3 ग्राम मात्रा का प्रति लीटर पानी की दर से घोल बना कर छिड़काव करना चाहिए।

कटाई एवं मड़ाईः फसल की कटाई मूँग की किस्म पर निर्भर करती है। एक ही समय में पकने वाली प्रजाति में जब फसल 80 फीसदी तक पक जाती है, तो उसे जड़ से उखाड़ लेते हैं या काट लेते हैं। उसके बाद धूप में सुखा कर ट्रैक्टर या लकड़ी के डंडे से गहाई कर लेते हैं। सही समय पर फसल की कटाई करने के बाद गहाई कर के भंडारण करें। मूँग की फलियां गुच्छों में लगती हैं। पूरी फसल में फलियों को 2 से 3 बार में तोड़ लिया जाता है। आमतौर पर खरीफ की फसल में कुछ फलियां अंत तक बनती रहती हैं। ऐसी दशा में पकी फलियों को तोड़ना सही होता है। करीब 80 फीसदी फलियां पकने पर फसल की कटाई कर सकते हैं। पकी फसल पर बारिश होने की स्थिति में फलियों के अंदर दाने अंकुरित होने लगते हैं, लिहाजा मौसम को ध्यान में रखते हुए फसल की कटाई व फलियों की तोड़ाई करना सही होता है।

उपज – मूँग की औसत उपज 8 से 10 क्विंटल प्रति हेक्टयर होती है। नए तरीके से खेती करने पर इस की पैदावार 13 क्विंटल प्रति हेक्टयर तक ली जा सकती है।

सब्जियों में पोषक तत्व प्रबन्धन

प्रवीण कुमार मिश्र, शशिकांत यादव एवं आर०आर० सिंह

सब्जियों में पोषक तत्व प्रबन्ध, संतुलित मात्रा में खाद एवं उर्वरकों के प्रयोग करने की वह आधुनिक विधि है, जिसमें रासायनिक उर्वरकों के साथ–साथ स्थानीय स्तर पर उपलब्ध कार्बनिक खाद एवं जैविक खाद का प्रयोग इस अनुपात में किया जाता है कि पैदावार अधिक लाभप्रद एवं टिकाऊ हो। इसके साथ ही साथ पर्यावरण एवं मिट्टी की भौतिक दशा पर कोई बुरा प्रभाव न पड़े, परन्तु यह आवश्यक है कि कार्बनिक खाद स्थानीय स्तर पर कम लागत में आसानी से उपलब्ध हो, सामाजिक रूप से स्वीकार हो और उसके उपयोग से पर्यावरण संतुलन कायम रहे। रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से सब्जियों की पैदावार में आशातीत सफलता अवश्य मिली परन्तु उनकी गुणवत्ता में कमी आयी। इसका मुख्य कारण पौधों को संतुलित मात्रा में तत्वों की अनुपलब्धता है। मनुष्य की तरह पौधों को भी 16 तत्वों की आवश्यकता पड़ती है, परन्तु किसान भाई अपनी फसलों में केवल नत्रजन, फास्फोरस व पोटाश का ही ज्यादातर प्रयोग करते हैं और वह भी असन्तुलित मात्रा में और उसमें भी नत्रजन का प्रयोग ज्यादा हो रहा है।

हमारी मिट्टी में इन पोषक तत्वों का अपार भण्डार था परन्तु सदियों से लगातार खेती होने से इन पोषक तत्वों का दोहन हुआ, जिससे विद्यमान विशाल भण्डार बहुत कम हो गया है और वर्तमान समय में पौधे इनकी कमी के लक्षण परिलक्षित कर रहे हैं। मृदा वैज्ञानिक लिविंग के अनुसार सब्जियों की पैदावार का घटना या बढ़ना फसल को प्रदान किए गए पोषक तत्वों पर निर्भर करती है और इनमें किसी भी तत्व की कमी या अधिकता होने पर पैदावार उसी अनुपात में प्रभावित होती है। भले ही उस तत्व की आवश्यकता न्यूनतम हो।

पोषक तत्व प्रबंधन की आवश्यकता–

हरित क्रांति के बाद फसलों की पैदावार में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है, परन्तु रासायनिक उर्वरकों के अनियमित व असंतुलित मात्रा में प्रयोग से मिट्टी की भौतिक दशा बराबर बिगड़ती जा रही है और उर्वरकों की मात्रा संस्तुत मात्रा से अधिक बढ़ाने पर भी पैदावार में आशातीत वृद्धि नहीं हो पा रही हैं। बराबर अधिक उपज देने वाली प्राजातियों के चलन से यह समस्या अधिक गम्भीर हो गयी है। रासायनिक उर्वरकों के अधिक प्रयोग से मृदा प्रदूषण, जल प्रदूषण व वायु प्रदूषण बढ़ रहा है और आये दिन तरह–तरह की जानलेवा बीमारियाँ पैदा हो रही है।

उपरोक्त का ज्वलन्त उदाहरण पंजाब राज्य की मिट्टी है जहाँ लोग गेहूँ का रिकार्ड पैदावार लेते थे परन्तु रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से पैदावार बढ़ाते–बढ़ाते मिट्टी की दशा इतनी बर्बाद हो गयी है कि आज सामान्य पैदावार लेना भी दुरूह कार्य है। हमारे पूर्वज खेती में कार्बनिक खाद का ज्यादा प्रयोग करते थे, परन्तु आधुनिक युग की कृषि में मशीनीकरण की अधिकता से लोग पशुपालन कम कर दिए हैं, जिसके परिणामस्वरूप लोग अपने खेतों में कार्बनिक खाद का प्रयोग कम कर रहे हैं। कार्बनिक खादों से न केवल पोषक तत्वों की पूर्ति को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। मृदा उर्वरता का संतुलन इस प्रकार बनाया जाए कि फसल के भूख के अनुसार उन्हें आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध होते रहें और सब्जियों का वांछित उत्पादन भी प्राप्त होता रहे, ताकि जो सूक्ष्म तत्वों की कमी का अनुभव किया जा रहा है उसकी पूर्ति हो सके, क्योंकि नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश की तरह अन्य आवश्यक एवं सूक्ष्म तत्वों का प्रयोग अलग–अलग करने में परेशानी होती है।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्ध का प्रारूपः–

भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान में किए गए प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि गंधक के प्रयोग से औसतन सभी सब्जियों की पैदावार में वृद्धि हुई है। संकर टमाटर के एक प्रयोग में नत्रजन, फास्फोरस व पोटाश (120:60:60 किग्रा0 / है0) के साथ 5 टन प्रेसमड / है0 देने व टमाटर की पौधे एजोटोवैक्टर से उपचारित कर रोपण करने तथा पौधे बढ़वार के तीन कांतिक अवस्थाओं पर 20 पी0पी0एम0 फेरस अमोनियम सल्फेट के पर्णीय छिड़काव से टमाटर के फलों की पैदावार 1700कु0 / है0 तक प्राप्त हुई है।

प्रयोग से यह देखा गया कि संस्तुत रासायनिक उर्वरकों के साथ–साथ 5 टन प्रेसमड / है0 देने या 20 टन गोबर की खाद / है0 का प्रयोग सर्वोत्तम रहा।

नोटः प्रेसमड कम से कम छः महीने पुरानी होनी चाहिए।

पौधों को बढ़वार और विकास के लिए मुख्य रूप से 16 तत्वों की आवश्यकता होती है जो विभिन्न स्त्रोतों से

आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज अयोध्या–224229

रासायनिक उर्वरक
- रासायनिक उर्वरकों की संतुलित मात्रा
- मृदा परीक्षण
- सही समय व विधि से उर्वरकों का प्रयोग
- मुख्य तत्व–मृदा में प्रयोग
- सूक्ष्म तत्व–पर्णीय छिड़काव

कार्बनिक खादें
1. गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद का उपयोग
2. प्रेसमड
3. उपचारित सीवेज स्लज
4. ऊनी गलीचे के बुजबुन
5. खलियाँ
6. मुर्गी के बिछावन की खाद
7. गोमूत्र व बायोडायनामिक खादें
8. पौधों व जानवरों का सड़ा गला मल, जीवांश
9. सनई ढेंचा की हरी खाद
10. केंचुए की खाद

एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्ध

जैविक उर्वरक
- एजोटोवैक्टर
- एजोस्पाइरीलम
- फास्फोरस विलेयक लगाना
- वेसुकुलर आरवस्कुलर माइकोराइजा (वाम)

अन्तः संस्य क्रियाएँ
- फसल चक्र
- दलहनी सब्जियाँ व फसलें
- मिश्रित व अन्तरवर्ती फसलें
- संरक्षक जुताई
- उचित जल निकासी
- मेड़ बन्दी

पौधों के पोषक तत्व

वायु एवं जल द्वारा

कार्बन
हाइड्रोजन

मृदा द्वारा

मुख्य तत्व
नाइट्रोजन
फास्फोरस
पोटैशियम

गौण तत्व
गन्धंक
कैल्शियम
मैग्नीशियम

सूक्ष्म तत्व
जस्ता, बोरान, लोहा
मालिब्डेनम, ताँबा
क्लोरीन, मैगनीज

पोषक तत्व	स्रोत	संस्तुत सांद्रण पी0पी0एम0	प्रति 600ली0/है.घोल के लिए पी0पी0एम0 आवश्यक मात्रा (ग्राम)
जस्ता	जिंक सल्फेट 36% जस्ता	20–200	52.68–526.80
लोहा	आयरन सल्फेट 20% लोहा	50–500	150–1494
ताँबा	कॉपर सल्फेट 25% ताँबा	5–100	11.71–235.80
मैगनीज	मैगनीज सल्फेट 28% मैगनीज	30–500	55.28–929.00
बोरान	बोरेक्स 11% बोरान	25–300	85.872–1030.50
मालिब्डेनम	अमोनियम मालिब्डेह 56% मालिब्डेनम	0.5–15	0.55–16.56
सल्फर	फेरस अमोनियम सल्फेट 18% सल्फर	15–20	54–72

(शेष पृष्ठ 25 पर)

प्राकृतिक खेती : कम लागत की तकनीकी

रणधीर नायक*, अर्चना देवी** एवं डी०के० सिंह***

बौनी किस्मों के आने से रासायनिक खादों का अंधाधुंध प्रयोग होने लगा। जमीन की उर्वरा शक्ति घटती चली गई। इसके साथ–साथ बीमारी व कीटों का आक्रमण बढ़ने लगा जिसकी वजह से रासायनिक दवाइयों का अत्यधिक इस्तेमाल होने लगा। भूमि, पानी व वातावरण भी दूषित होने लगे। अधिक रासायनिक खाद व दवाइयों के कारण भूमि में विद्यमान सूक्ष्मजीव, केंचुए इत्यादि की गतिविधि क्रियाशीलता कम होती चली गई, जिसका दुष्प्रभाव यह हुआ की भूमि का भौतिक, रासायनिक व जैविक संतुलन बिगड़ गया। भरपूर पैदावार होने से हमारा पेट तो भर गया, लेकिन धरती का पेट खाली होता चला गया।

भारतीय कृषि विशेषकर जहां आवश्यकता से अधिक रासायनिक खाद व दवाओं का प्रयोग होता है वहां बाढ़ व सूखे से होने वाले नुकसान का प्रभाव अधिक हो सकता है, क्योंकि इन क्षेत्रों में जमीनें लगातार अत्यधिक प्राकृतिक संसाधनों के दोहन का शिकार हो रही हैं। थोड़ी–सी अधिक वर्षा होने के साथ ही बाढ़ के हालात बन जाते हैं और सूखे की स्थिति में ट्यूबवेल पानी छोड़ने लगते हैं। स्पष्ट है कि हम अत्यधिक भयावह स्थिति की तरफ बढ़ रहे हैं, क्योंकि यह वे क्षेत्र हैं जो पूरे देश की खाद्य सुरक्षा में अहम योगदान देते हैं। अतः इस क्षेत्र में कम लागत प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देना देश और किसानों के हित के लिए और भी अधिक महत्वपूर्ण है।

प्राकृतिक खेती का सबसे पहला सिद्धांत ही यह है कि पौधों का नहीं अपितु जमीन का स्वास्थ्य मजबूत करो। जमीन के स्वस्थ होते ही पौधा स्वयं ही स्वस्थ हो जाता है। यदि जमीन का स्वास्थ्य मजबूत है तो पौधा मौसम एवं वायुमंडल की विविधताओं के साथ लड़ने में सक्षम हो जाता है। अतः भविष्य की वायुमंडल की संभावित विषम परिस्थितियों से यदि भारतीय कृषि को बचाकर आगे ले जाना है तो हमें कम लागत प्राकृतिक खेती को अपनाना होगा।

प्राकृतिक पद्धति में उगाई गई फसल मौसम की मार एवं जलवायु परिवर्तन जैसे कारणों से आए उतार–चढ़ाव में भी सीना ताने खड़ी रहती है और किसी भी संभावित मौसम के खतरों का सामना करने में सक्षम होती है। भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, (आई.सी.ए.आर.) मोदीपुरम् में किए गए जांच परिक्षणों में यह बात भी सामने आई है कि घनजीवामृत में नाइट्रोजन की मात्रा केंचुए की खाद से दोगुना और

तालिका 1:– गुरूकुल कुरूक्षेत्र में तैयार किये गये खाद में पोषक तत्वों की मात्रा

प्राकृतिक फार्मूलेशन	नाइट्रोजन (प्रतिशत)	फास्फोरस (प्रतिशत)	पोटाश (प्रतिशत)	जिंक (पी.पी.एम.)	कॉपर (पी.पी.एम.)	लोहा (पी.पी.एम.)
केंचुआ खाद	0.49	0.42	1.94	296	47.0	8154
घनजीवामृत	0.99	0.49	4.51	229	45.6	6002

तालिका 2:– गुरूकुल कुरूक्षेत्र में तैयार किये गये प्राकृतिक घटकों (फोर्मूलेशन) में पोशक तत्वों की मात्रा

प्राकृतिक (घटक) फार्मूलेशन	नाइट्रोजन (प्रतिशत)	फास्फोरस (प्रतिशत)	पोटाश (प्रतिशत)	जिंक (पी.पी.एम.)
जीवामृत	0.896	2.98	884	1.38
नीमास्त्र	0.672	2.19	1584	3.88
अग्नि अस्त्र	1.176	0.38	709	1.09
दशपर्णी अर्क	2.184	0.34	602	1.83
खट्टी लस्सी	2.80	25.84	430	2.24
गेमूत्र	1.50	6.79	9000	–
भैंस का मूत्र	0.90	7.96	5130	–

*वरिष्ठ वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान), **वैज्ञानिक (पादप प्रजनन) एवं ***प्रभारी अधिकारी, कृषि विज्ञान केन्द्र, कोटवा, आजमगढ़–1,
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या–224229, उ०प्र०

जीवामृत का निर्माण

1.	देशी गाय का गोबर	10 कि.ग्रा.
2.	देशी गाय का मूत्र	8–10 लीटर
3.	गुड़	1.5–5 कि. ग्रा.
4.	बेसन	1.5–5 कि. ग्रा.
5.	पानी	180 लीटर
6.	पेड़ के नीचे की मिट्टी	500 ग्राम

पोटाश की मात्रा दो गुना से अधिक पायी गई (तालिका 1)। घनजीवामृत में सूक्ष्म पोषक तत्व (जिंक, कॉपर, लोहा) प्रचुर मात्रा में पाए गए। घनजीवमृत की एक एकड़ के लिए एक खुराक लगभग 10 से 12 दिनों में तैयार हो जाती है जबकि केंचुए की खाद तैयार करने में ढाई से 3 महीने का समय लगता है।

स्रोत – तालिका 1 और 2 का स्त्रोत आचार्य देवव्रत जी की पुस्तक 'कम लागत : प्राकृतिक खेती से लिया गया है।

तालिका 2 में दिए गए आंकड़ों से स्पष्ट है कि जीरो बजट प्राकृतिक कृषि में जितने भी प्राकृतिक उत्पाद इनपुट के रूप में प्रयोग किये जाते हैं, उन सभी में फसल सुरक्षा निश्चित होने के साथ–साथ पोषक तत्व भी भरपूर मात्रा में उपलब्ध है अर्थात यह सभी उत्पाद कीट व बीमारी नियंत्रण के साथ–साथ फसल की बढ़वार में भी पोषण प्रदान करते हैं। खट्टी छाछ और गोमूत्र में भी पोषक तत्व भरपूर मात्रा में उपलब्ध है। खट्टी छाछ का प्रयोग फसल में बालियां आने के बाद किया जाता है। यह उत्पाद फसल की बीमारियों को नियंत्रित करते हैं साथ बनने वाले दाने को भी ताकत प्रदान करते हैं जिससे पैदावार में बढ़ोत्तरी होता है।

जीवामृत (जीव अमृत) और इसके निर्माण की विधि

बार–बार प्रयोग करने के पश्चात परिणाम निकला कि एक एकड़ प्रक्षेत्र के लिए 10 किलोग्राम गोबर के साथ गोमूत्र, गुड़ और दो दालों के बीज का आटा या बेसन आदि मिलाकर प्रयोग में लाने से चमत्कारी परिणाम निकलते हैं।

उपरोक्त सामग्रियों को प्लास्टिक के एक ड्रम में डालकर लकड़ी के एक डंडे से घोलना है और इस घोल को दो से तीन दिन तक सड़ने के लिए छाया में रख देना है। प्रतिदिन दो बार सुबह–शाम घड़ी की सुई की दिशा में लकड़ी के डंडे से 2 मिनट तक इसे घोलना है और जीवामृत को बोरी से ढक देना है (शीत प्रधान स्थानों में पशु जहां बांधे जाते हैं उस घर में ही जीवामृत के घोल को तैयार करें व उपयोग होने तक वहीं रखें ताकि शीतलता के कारण जीवाणुओं की संख्या वृद्धि में बाधा ना आए)। इसके सड़ने से अमोनिया, कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन जैसी हानिकारक गैसों का निर्माण होता है।

गर्मी के महीने में जीवामृत बनने के बाद 7 दिन तक उपयोग में लाना है और सर्दी के महीने में 8 से 15 दिन तक इसका उपयोग कर सकते हैं। उसके बाद बचा हुआ जीवामृत भूमि पर फेंक देना है।

जीवामृत का प्रयोग

जीवामृत को महीने में दो बार या एक बार उपलब्धता के अनुसार, 200 लीटर प्रति एकड़ के हिसाब से सिंचाई के पानी के साथ दीजिए, इससे खेती में चमत्कार होगा।

फलों के पेड़ों के पास पेड़ की दोपहर 12:00 बजे जो छाया पड़ती है, उसे छाया के पास प्रति पेड़ 2 से 5 लीटर जीवामृत भूमि पर महीने में एक बार या दो बार गोलाकार डालना है जीवामृत डालते समय भूमि में नमी होना आवश्यक है।

बीजामृत (बीज अमृत)

किसान भाईयों! बुवाई करने से पहले बीजों का संशोधन करना बहुत जरूरी है। इसके लिए बीजामृत बहुत ही उत्तम है। जीवामृत की भांति ही बीजामृत में भी में वही चीजें डाली है, जो हमारे पास बिना किसी कीमत के मौजूद हैं। बीजामृत निम्नलिखित सामग्री से बनता है–

1.	देसी गाय का गोबर	5 किलोग्राम
2.	गोमूत्र	5 लीटर
3.	चूना (कली)	250 ग्राम
4.	पानी	20 लीटर
5.	खेत की मिट्टी	मुट्ठी भर

इन सभी पदार्थों को पानी में घोलकर 24 घंटे तक रखें। इसके बाद बीजों के ऊपर बीजामृत डालकर उन्हें शोधित करना है। उसके बाद छाया में सुखाकर फिर बुआई करनी है। बीजामृत द्वारा शोधित हुए बीज जल्दी और ज्यादा मात्रा में उगते हैं। जड़ें तेजी से बढ़ती हैं। पौधे, भूमि द्वारा लगने वाली बीमारियों से बचे रहते हैं एवं अच्छी प्रकार से पलते–बढ़ते हैं।

घनजीवामृत

घनजीवामृत निम्न सामाग्री से बनता है–

1. 100 किलोग्राम देशी गाय का गोबर
2. 1 किग्रा गुड़

3. 2 किलोग्राम दलहन का बेसन
(अरहर, चना, मूँग या उड़द)
4. 500 ग्राम खेत की मिट्टी
5. 10 लीटर गोमूत्र

उपरोक्त सभी पदार्थों को अच्छी तरह से मिलाकर गूंथ लें। इस गीले घनजीवामृत को आप छाया या हल्की धूप में अच्छी तरह फैलाकर सुखा लें। सूखने के बाद इसको लकड़ी से पीटकर बारीक करें तथा बोरों में भरकर छाया में भंडारण करें। यह घनजीवमृत आप सुखाकर 6 महीने तक रख सकते हैं। सूखने के बाद घनजीवामृत स्थित सूक्ष्मजीव समाधि लेकर कोष धारण करते हैं। जब आप घनजीवामृत भूमि में डालते हैं, तब भूमि में नमी मिलते ही यह सूक्ष्म जीव कोष तोड़कर, समाधि भंग करके पुनः कार्य में लग जाते हैं। जिसके पास गोबर ज्यादा है, उसके लिए ज्यादा मात्रा में घनजीवामृत बनाकर सीमित फसलों में गोबर खाद में मिलाकर इसका प्रयोग करें।

किसी भी फसल की बुवाई के समय प्रति एकड़ 100 किलोग्राम छाना हुआ गोबर खाद और 100 किलोग्राम घनजीवामृत मिलाकर बीज बोयें। यह परीक्षण प्रत्येक फसल में और फलदार पौधों में किया गया है और चमत्कारी परिणाम पाया गया है। इससे आप रासायनिक खेती से या जैविक खेती से ज्यादा उपज ले सकते हैं।

फसल सुरक्षा हेतु उपाय

किसी भी फसल पर या फलदार पेड़ों पर छिड़काव के लिए घर पर ही कम लागत से दवा बनाना।

1.दशपर्णी अर्क दवा : सभी प्रकार के रसचूसक कीट और सभी इल्लियों के नियंत्रण के लिए।

उपरोक्त सभी वनस्पतियों में से कोई 10 वनस्पतियां डालें, पहली पांच महत्वपूर्ण हैं।

विधि : उपरोक्त सभी वनस्पतियों को एक ड्रम में घोलें, लकड़ी के डंडे से घड़ी की सुई की दिशा में दिन में दो बार अर्थात सुबह–शाम घोलें, छाया में रखें एवं पानी व धूप से बचाएं। इस औषधि को 40 दिन तैयार होने के लिए रखें। 40 दिन बाद उसे कपड़े से छानें एवं भंडारण करें।

अवधि उपयोग – 6 महीने
छिड़काव पानी – 200 लीटर / एकड़
दशपर्णी दवा – 5 या 6 लीटर

ब्रह्मास्त्र : बड़े कीड़े–मकोड़ों की रोकथाम के लिए

विधि : उपरोक्त में से कोई पांच वनस्पतियों का गूदा

क्र.सं.	आवश्यक सामाग्री	मात्रा
1.	पानी	200 लीटर
2.	देशी गाय का गोमूत्र	10 लीटर
3.	देशी गाय का गोबर	2 कि.ग्रा.
4.	हल्दी पाउडर	500 ग्राम
5.	अदरख की चटनी	500 ग्राम
6.	हींग पाउडर	10 ग्राम
7.	खाने का तम्बाकू पाउडर	1 कि.ग्रा.
8.	तीखी हरी मिर्च की चटनी	1 कि.ग्रा.
9.	लहसुन की चटनी	आधा कि.ग्रा.
10.	नीम के पेड़ के नीचे की छोटी–छोटी टहनियां	2 कि.ग्रा.
11.	करंज के पत्ते	2 कि.ग्रा.
12.	अरण्डी के पत्ते	2 कि.ग्रा.
13.	बेल के पत्ते	2 कि.ग्रा.
14.	आम के पत्ते	2 कि.ग्रा.
15.	धतूरे के पत्ते	2 कि.ग्रा.
16.	तुलसी की टहनियां फूल–पत्तों सहित	2 कि.ग्रा.
17.	अमरूद के पत्ते	2 कि.ग्रा.
18.	देशी करेले के पत्ते	2 कि.ग्रा.
19.	पपीते के पत्ते	2 कि.ग्रा.
20.	हल्दी के पत्ते	2 कि.ग्रा.
21.	अरदख के पत्ते	2 कि.ग्रा.
22.	बबूल के पत्ते	2 कि.ग्रा.
23.	सीताफल के पत्ते	2 कि.ग्रा.
24.	सोंठ का पाडउर	200 ग्राम

गोमूत्र में घोलिए और ढंक कर रखें तथा बर्तन में उबालें। 4 उबाल लगातार होने पर तथा 48 घंटे रखने पर कपड़े से छान लें और ढंककर रखें। ब्रह्मास्त्र तैयार है 100 लीटर पानी में दो से तीन लीटर ब्रह्मास्त्र मिलाकर छिड़काव करें। इसे 6 महीने तक रख सकते हैं।

1.नीमास्त्र : रस चूसने वाले कीट और छोटी सुन्डियों

क्र.सं.	आवश्यक सामाग्री	मात्रा
1.	गोमूत्र	10 लीटर
2.	नीम के पत्ते पीसकर	5 कि.ग्रा.
3.	सफेद धतूरे के पत्ते पीसकर	2 कि.ग्रा.
4.	सीताफल के पत्ते पीसकर	2 कि.ग्रा.
5.	करंज के पत्ते	2 कि.ग्रा.
6.	अमरूद के पत्ते	2 कि.ग्रा.
7.	अरण्डी के पत्ते	2 कि.ग्रा.
8.	पपीते के पत्ते	2 कि.ग्रा.

क्र.सं.	आवश्यक सामाग्री	मात्रा
1.	नीम के पत्ते व फल पीसकर	5 कि.ग्रा.
2.	गोमूत्र	5 लीटर
3.	गोबर	1 कि.ग्रा.
4.	पानी	100 लीटर

के नियंत्रण के लिए।

विधि : उपरोक्त वस्तुओं को एक ड्रम में डालकर 48 घंटे तक रखें, दिन में तीन बार लकड़ी के डंडे से घोलें फिर कपड़े से छानकर छिड़काव करें।

4. अग्नि अस्त्र : पत्तों में छेद करने वाले कीड़े (सुंडी) फलों में रहने वाले सुंडियों व सभी प्रकार के बड़े कीड़ों को नियंत्रित करने वाला कीटनाशक।

क्र.सं.	आवश्यक सामाग्री	मात्रा
1.	गोमूत्र	10 लीटर
2.	तीखी हरी मिर्च की चटनी	आधा कि.ग्रा.
3.	लहसुन	आधा कि.ग्रा.
4.	नीम के पत्ते व फल पीसकर	5 कि.ग्रा.
5.	तम्बाकू खाने वाला	1 कि.ग्रा.

विधि : उपरोक्त वस्तुओं को मिलाकर उबालें, 4 उबाल आने पर बर्तन में रखें, 48 घंटे तक ठंडा होने पर छान लें। 100 लीटर पानी में 2–3 लीटर अग्नि अस्त्र मिलाए। समय अवधि 3 महीने। (थिप्स के लिए 200 लीटर पानी, 1.5 लीटर ब्रह्मास्त्र, 1.5 लीटर अग्नि अस्त्र मिलाकर छिड़कें।)

5. फफूंदनाशक दवा

विधि : उपरोक्त दोनों वस्तुओं को मिलाकर छिड़काव करें, बहुत ही बढ़िया फफूंदनाशक दवा है।

क्र.सं.	आवश्यक सामाग्री	मात्रा
1.	पानी	100 लीटर
2.	खट्टा छाछ	3 लीटर

आच्छादन

भूमि के ऊपरी सतह का ढकना "आच्छादन" कहलाता है। भूमि की संजीवता और उर्वरा शक्ति को सुरक्षित एवं संरक्षित करने का कार्य आच्छादन करता है। आच्छादन करने से सूक्ष्म पर्यावरण का निर्माण होता है जिससे देशी केंचुए भूमि की ऊपरी सतह पर आकर अपनी विष्टा डालते हैं और इससे भूमि में जीव द्रव्य का निर्माण होता है अर्थात मिट्टी मुलायम व बलवान बन जाती है। इस मिट्टी में सभी प्रकार के जीवाणुओं की संख्या शीघ्रता से बढ़ती है। इन जीवाणुओं के कारण ह्यूम्स को लू, शीत लहर, तीव्र वर्षा, तीव्र वायु और बाह्य शत्रुओं से सुरक्षित रखने के लिए आच्छादन की आवश्यकता होती है।

वापसा

कृषि वैज्ञानिक किसानों को बताते हैं कि पौधों की जड़ों को पानी चाहिए। वास्तव में जड़ों को पानी नहीं चाहिए बल्कि पौधों की जड़ों को नमी चाहिए अर्थात वापसा चाहिए। भूमि के अंदर मिट्टी के दो कणों के बीच जो खाली जगह होती है, उसमें पानी का अस्तित्व नहीं चाहिए बल्कि उसे खाली जगह में 50% वाष्प और 50% हवा का सम्मिश्रण चाहिए। इस स्थिति को 'वासपा' कहते हैं। जब हम दो कणों के बीच पानी भर देते हैं तो वहां की हवा ऊपर निकल जाती है, इससे जड़ों का जीवाणुओं को ऑक्सीजन नहीं मिलता और वह मर जाते हैं या फल पीली पड़ जाती है। कभी–कभी फसल भी सूख जाती है, इसीलिए प्राकृतिक कृषि में पानी उतना ही देना चाहिए जड़ों के पास खाली जगह में वासपा रहे अर्थात् पानी ना भरे।

निष्कर्ष

कम लागत प्राकृतिक खेती में पानी की भी बचत होती है। जमीन में पानी को सोखने की क्षमता बढ़ती है। यदि वर्षा कम हो तो लंबे समय तक जल की उपलब्धता बनी रहती है। जल, नमी, तापमान व मौसम की दूसरी विविधताओं में भूमि के केचुएं भी कार्य करने के स्थान में परिवर्तन करते रहते हैं। ऊपर की सतह में अधिक नमी अथवा अधिक या बहुत कम तापमान होने पर जमीन की गहराई में जाकर अपना कार्य करते हैं और 20 फीट तक भूमि में सुराग करते हुए खेत को नीचे की परतों में भी उपजाऊ बना देते हैं। ऐसे खेतों में अधिक वर्षा होने पर जब पानी भर जाता है तो उसमें बुलबुल आते हुए दिखाई देते हैं लेकिन यह तभी होता है जब प्राकृतिक खेती के अंतर्गत जमीन का अच्छी तरह से विकास हो जाता है, इसीलिए गिरते भूमिगत जल स्तर को सुधारने के लिए प्राकृतिक खेती का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है।

कम लागत कृषि का नारा है –

"गांव का पैसा गांव में, शहर का पैसा गांव में"

चना फली छेदक के प्रकोप के पूर्वानुमान की विधि

लाल पंकज कुमार सिंह* एवं चन्दन सिंह**

चना फली छेदक कीट चने की फसल को सर्वाधिक नुकसान पहुँचाता है। चना की खेती यू0पी0 में अक्टूबर से मार्च तक की जाती है। चना एक ऐसी फसल है जिसका प्रयोग हम साग, होरहा, कच्चा भूना, छोला, बेसन, मीठा, नमकीन, दाल, रोटी, सब्जी आदि के रुप में करते हैं। उत्तर प्रदेश में चने की खेती लगभग 2,67,629 हे. क्षेत्र पर की जाती है, जिसकी औसतन उपज 6.11 कु./हे. है। अक्टूबर से दिसम्बर तक के मध्य चना फली छेदक सूड़ी चना की पत्तियों को खाकर नुकसान पहुँचाती है तथा फरवरी से मार्च के महीनों में यही सूड़ी चना की फलियों को खाकर क्षति पहुँचाती है। अक्सर किसान भाई चना फली छेदक का प्रकोप उस समय समझ पाते हैं जब सूड़ी बड़ी होकर चने की फसल को 5–7ः तक नुकसान पहुँचा चुकी होती है। इसके फलस्वरुप इस अवस्था में चना फली छेदक सूड़ी का नियंत्रण कर पाना काफी मुश्किल एवं मंहगा होता है जिससे किसान भाईयों को भारी आर्थिक क्षति होती है। यौन रसायन आकर्षक जाल (फेरोमोन ट्रैप) चने की फसल में चना फली छेदक सूड़ी की संख्या की निगरानी करने की एक सरल विधि है। इस विधि द्वारा चना फली छेदक के प्रकोप का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। जिससे समय से उपयुक्त फसल सुरक्षा का उपाय करके फसल को आर्थिक क्षति से बचाया जा सके। इस विधि में चना फली छेदक के मादा पतंगों के यौन स्राव रसायन की गन्ध से मिलता जुलता कृत्रिम संश्लेषित रसायन का प्रयोग किया जाता है, जो नर पतंगों को अपनी तरफ आकर्षित करता है। नर पतंगे इससे आकर्षित होकर जाल के निचले भाग में लगी पालिथीन की थैली में आकर गिर जाते हैं। नर पतंगों का इस जाल में होना इस बात का पूर्वाज्ञान देता है कि चना फली छेदक के पतंगें (नर एवं मादा) वातावरण में मौजूद हैं और आने वाले दिनों में इनका प्रकोप बढ़ सकता है। इस अवस्था में चना फसल की सुरक्षा के उपयुक्त उपाय अपनाना चना फली छेदक कीट के नियंत्रण के लिए आवश्यक होता है।

यौन रसायन आकर्षक जाल (फेरोमोन ट्रैप) के मुख्य भागः–

1.जाल (ट्रैप)ः यह टीन या प्लास्टिक के कीप के आकार की संरचना होती है जिसके निचले भाग में एक पालिथीन की थैली लगी रहती है। इस जाल को डण्डे से खेत में फसल से 2 फीट की ऊँचाई पर लगाया जाता है।

2.यौन रसायन गुटका (ल्योर)ः यह सेप्टा यौन रसायन आर्कषण जाल का प्रमुख अवयव है जिसको कुप्पीनुमा जाल के ढक्कन के अन्दर के भाग में बीच में बने गड्ढे में फॅसाकर लगाया जाता है। इस गुटके से चना फली छेदक के मादा पतंगों से निकलने वाली प्राकृतिक रसायन की तरह गन्ध निकलती है। इसी गन्ध से आकर्षित होकर नर पतंगें, मादा पतंगों का वातावरण में होने के भ्रम से इस जाल में आ जाते हैं और जाल के निचले भाग में लगी पालिथीन की थैली में इकट्ठा हो जाते हैं।

गंधपाश (फेरोमोन ट्रैप) प्रयोग विधिः

चना के फसल में इस जाल का प्रयोग 18–20 जाल प्रति हे0 की दर से करना चाहिए व जाल में चना फली छेदक के नर पतंगों की नियमित निगरानी करनी चाहिए। जब 4–5 नर पतंगे एक यौन आकर्षण जाल में 4–5 रातों तक लगातार दिखें तो किसानों को फसल सुरक्षा उपायों की तैयारी तुरन्त करनी चाहिए। इस जाल में लगे यौन रसायन गुटके या सेप्टा का रसायन 25–28 दिनों में हवा में उड़ कर समाप्त हो जाता है, इसीलिए समय–समय पर इसे बदलते रहने की जरूरत है। नर पतंगों की संख्या नियंत्रित (कम) होने से इनकी वृद्धि दर प्रभावित होती है और पर्यावरण को कोई क्षति भी नहीं होती है। यौन रसायन आकर्षण जाल, चना फली छेदक सूड़ी की संख्या की निगरानी करने की एक कम लागत की प्रभावशाली विधि है। इस निगरानी से प्राप्त जानकारी पूरे गॉव या क्षेत्र के लिए उपयोगी होती है। इस प्रकार इसके प्रयोग से एक बड़े क्षेत्र के चना की फसल को चना फली छेदक से होने वाली क्षति से बचाया जा सकता है।

*विषय वस्तु विशेषज्ञ, फसल सुरक्षा, **विषय वस्तु विशेषज्ञ, मृदा विज्ञान, कृषि विज्ञान केन्द्र, मऊ

पपीता की उन्नत बागवानी

एस०पी० सिंह एवं एस०के० तोमर

पपीता एक प्रमुख उष्ण एवं उपोष्ण कटिबन्धीय फल है। भारत का विश्व में पपीता उत्पादक देशों में ब्राजील, मैक्सिको एवं नाइजिरिया के बाद चौथा स्थान है। भारत में पपीता की खेती 73.7 हजार हेक्टेयर क्षेत्रफल में होती है तथा उत्पादन 25.90 लाख टन है। आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, उड़ीसा, गुजरात, महाराष्ट्र, असम, बिहार, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश प्रमुख उत्पादक राज्य है। इसके औषधीय गुणों एवं आर्थिक रूप से लाभकारी होने के कारण पूर्व के कुछ वर्षो में लोगों ने इसकी खेती की ओर अधिक ध्यान देना शुरू किया, जिससे पिछले एक दशक में पपीता के उत्पादन में तीन गुना वृद्धि हुई।

पपीता के फलों में विटामिन 'ए' प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, जो कि आम के बाद दूसरे स्थान पर है। इसके अतिरिक्त विटामिन 'सी' एवं खनिज लवण भी पाये जाते हैं। ताजा उपयोग के अतिरिक्त पपीता के फलों से अनेक परिरक्षित पदार्थ बनाये जाते हैं। कच्चे फल का उपयोग पेठा, बर्फी, खीर, रायता इत्यादि के लिए किया जाता है, जबकि पके फलों से जैम, जेली, नेक्टर तथा कैन्डी आदि बनाये जाते हैं। इसके साथ–साथ इसमें एक विशिष्ट प्रकार की एन्जाइम होती है जिसे पपेन कहते हैं जो कि पपीते के कच्चे फलों का सुखाया हुआ दूध है। पपीता का औषधीय गुण इसी पपेन के कारण होता है।

भूमि एवं जलवायुः पपीते की सफल बागवानी हेतु गहरी और उपजाऊ, सामान्य पी.एच. मान वाली बलुई दोमट मिट्टी अत्यधिक उपयुक्त मानी गयी है। इसकी बागवानी के लिए भूमि में जल निकास का होना बहुत जरूरी है क्योंकि यह जल भराव के प्रति काफी सुग्राह्य है। पपीता एक उष्ण कटिबन्धीय फल है किन्तु इसकी खेती बिहार की समशीतोष्ण जलवायु में सफलतापूर्वक की जा रही है। इसकी बागवानी समुद्र तल से 1000 मीटर की ऊँचाई तक की जा सकती है। वायुमण्डल का तापमान 10 सें. से कम होने पर पपीता की वृद्धि, फलों का लगना तथा फलों की गुणवत्ता प्रभावित होती है। पपीता की अच्छी वृद्धि के लिए 22 सें. से 26सें. तापमान उपयुक्त पाया गया है। औसत वार्षिक वर्षा 1200–1500 मिमी. पर्याप्त होती है। पपीता के पकने के समय शुष्क एवं गर्म मौसम होने से फलों की मिठास बढ़ जाती है।

उन्नत किस्में: पपीता एक परपरागण वाली फसल है तथा इसका व्यावसायिक प्रवर्धन बीज के द्वारा होने के कारण एक ही प्रजाति में बहुत अधिक भिन्नता पायी जाती है। वर्तमान में भारत में पपीता की कई किस्में विभिन्न प्रदेशों में उगायी जा रही हैं। पपीता की कुछ प्रमुख किस्मों की संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है।

पंत पपीता 1: यह किस्म जी.वी. पंत कृषि एवं तकनीकी विश्वविद्यालय, पंतनगर द्वारा निकाला गया है। यह एक बौनी प्रजाति है, जिसका फल गोलाकार, मध्यम आकार एवं चिकनी त्वचा वाले होते हैं। जिसमें फल 40–50 सें.मी. पौधे की ऊँचाई पर लगते हैं। फलों का औसत वजन 1.0 से 1.5 कि.ग्रा. तक होता है तथा उपज 40–50 फल प्रति पौधे होता है। यह प्रजाति पपीते के सघन बागवानी के लिए उपयुक्त हैं।

पंत पपीता 2: यह भी पंतनगर से निकाली गई प्रजाति है। इसके पौधे मध्यम ऊँचाई के होते हैं जिसमें फल 50 – 60 सें.मी. की ऊँचाई पर लगते हैं। फल लम्बे आकार के होते हैं तथा उनका औसत वजन 1.5 कि.ग्रा. होते हैं। प्रति पौधा फलों की संख्या 30–35 तक हो सकती है।

पूसा नन्हा: यह पपीता की सबसे बौनी प्रजाति है जो गामा किरण द्वारा विकसित की गयी है। यह भी एक डायोसियस प्रजाति है। यह 30 सेंमी. की ऊँचाई से फलना प्रारम्भ करता है। इसमें प्रति पेड़ 25 किग्रा. फल प्राप्त होता है। इसके गूदे का रंग पीला तथा मोटाई 3 सेमी. होती है। इसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 9 ब्रिक्स होती है। यह प्रजाति सघन बागवानी तथा गृह वाटिका के लिए काफी उपयुक्त पायी गयी है।

पूसा डेलिसियस: यह एक गायनोडायोसियस प्रजाति है जिसमें मादा और उभयलिंगी पौधे निकलते हैं तथा उभयलिंगी पौधे भी फल देते हैं। यह 80 सेमी. की ऊँचाई से फल देता है। इसका फल अत्यंत स्वादिष्ट एवं सुगंधित होता है। फल का आकार मध्यम से लेकर साधारण बड़ा होता है। जिसका वजन 1–2 किग्रा. तक होता है। पकने पर फल के गूदे का रंग गहरा होता है तथा गूदा ठोस होता है। गूदे की मोटाई 4.0 सेमी. तथा कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 10 से 13 ब्रिक्स होता है। फलों की पैदावार 45 किग्रा. प्रति पेड़ होती है।

कृषि विज्ञान केंद्र, बेलीपार, गोरखपुर

पूसा मजेस्टी: इस प्रजाति में भी पूसा डेलिसियस की भांति मादा एवं उभयलिंगी पौधे निकलते हैं। यह 50 सें.मी. की ऊँचाई से फल देता है तथा एक फल का वजन 1.0–2.5 किग्रा. तक होता है। यह किस्म पैदावार में उत्तम है तथा फल में पपेन की मात्रा अधिक पायी जाती है। इसके फल अधिक टिकाऊ होते हैं तथा इसमें विषाणु रोग का प्रकोप कम होता है। पकने पर गूदा ठोस एवं पीले रंग का होता है तथा कुल घुलनशील ठोस 9 से 10 ब्रिक्स होता है। एक पेड़ से 40 किग्रा. फल प्राप्त होता है। इसके गूदे की मोटाई 3.5 सेमी. होती है। यह प्रजाति सूत्रकृमि अवरोधी है।

पूसा ड्वार्फ: यह एक डायोसियस प्रजाति है जिसमें नर एवं मादा पौधे निकलते हैं। इस किस्म के पौधे बौने होते हैं। तथा इसमें फलन जमीन से 40 सें.मी. की ऊँचाई से होती है तथा एक फल का वजन 0.5 से 1.5 किग्रा. होता है। इसकी पैदावार 40–50 किग्रा. प्रति पौध है। फल के पकने पर गूदे का रंग पीला होता है। गूदे के मोटाई 3.5 सेंमी. होती है तथा कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 9 ब्रिक्स होता है। पौधा बौना होने के कारण इसे आंधी या तूफ़ान से कम नुकसान होता है।

पूसा जायंट: यह भी एक डायोसियस प्रजाति है। इस किस्म के पौधे विशालकाय होते हैं जिसमें फलन जमीन से 80 सें.मी. की ऊँचाई से होती है। इसके फल बड़े होते है तथा एक फल का वजन 1.5 से 3.5 किग्रा. तक होता है। इसके गूदे का रंग पीला तथा मोटाई 5 सेंमी. होती है। इसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 8 ब्रिक्स होती है। प्रति पेड़ औसत उपज 30–35 किग्रा. है। यह किस्म पेठा और सब्जी बनाने के लिए काफी उपयुक्त है।

कुर्ग हनीड्यू: यह किस्म भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बंगलौर के केन्द्रीय बागवानी प्रयोग केंद्र चेट्टाली द्वारा चयनित किस्म है जिसका चयन हनीड्यू नामक प्रजाति से किया गया है। यह एक गायनोडायोसियस प्रजाति है। इसके पौधे मध्यम आकार के होते हैं। इसके फल लम्बे, अंडाकार आकार के एवं मोटे गूदेदार होते हैं। फल का वजन 1.5 से 2.0 किग्रा. होता है। गूदे का रंग पीला होता है। इसमें कुल घुलनशील ठोस 13.50 ब्रिक्स होती है। प्रति पौध औसत उपज 70 किग्रा. तक होती है।

सूर्या: यह सनराइज सोलो एवं पिंक फलेश स्वीट के संकरण द्वारा विकसित गायनोडायोसियस प्रजाति है। इसके फल मध्यम आकार के होते हैं जिनका औसत वजन 600–800 ग्राम तक होता है तथा बीज की कैविटी कम होती है। फल का गूदा गहरा लाल रंग का होता है जिसकी मोटाई 3–3.5 सें.मी. तथा कुल घुलनशील ठोस 13.5–150 ब्रिक्स होता है। फल की भंडारण क्षमता भी अच्छी है। प्रति पौध औसत उपज 55–65 किग्रा. तक होती है।

सी.ओ. 1: यह प्रजाति 1972 में राँची प्रजाति से चयनित की गयी है। यह एक डायोसियस किस्म है जिसके पौधे छोटे होते हैं। फल मध्यम आकार के गोल होते है जिनका गूदा पीले रंग का होता है। फल में कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 10 से 120 ब्रिक्स होती हैं। प्रति पौध औसत उपज 40 किग्रा. तक होती है।

सी.ओ. 2: इस किस्म का चयन 1979 में स्थानीय किस्म से किया गया है। यह एक डायोसियस प्रजाति है जिसमें पपेन प्रचुर मात्रा (4 से 6 ग्राम प्रति फल) में पायी जाती है। फल का औसत वजन 1.5 से 2.0 किग्रा. होता है। फल में 75 प्रतिशत गूदा होता है जिसकी मोटाई 3.8 सेंमी. तथा रंग नारंगी होता है। फल का आकार बड़ा होता है जिसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 11.4 से 13.50 ब्रिक्स होती है। प्रति पौध औसत उपज 80–90 फल प्रति वर्ष होती है। पपेन की औसत उपज 250 से 300 किग्रा. प्रति हेक्टेयर होती है।

सी.ओ. 3: यह को0 2 एवं सनराइज सोलो के संकरण द्वारा वर्ष 1983 में विकसित गायनोडायोसियस प्रजाति है। यह ताजे फल के रूप में खाने हेतु सर्वोत्तम किस्म है। इसके फल मध्यम आकार के होते है जिनका औसत वजन 500 से 800 ग्राम तक होता है। फल में गूदे का रंग लाल होता है। जिसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 14.6 ब्रिक्स होती है। प्रति पौध औसत उपज 90 से 120 फल होती है।

सी.ओ. 4: यह किस्म भी वर्ष 1983 में को0 1 एवं वाशिंगटन के संकरण से विकसित की गयी है। यह एक डायोसियस प्रजाति है। पौधे के तने तथा पत्ती के डंठल का रंग वैगनी होता है। फल मध्यम आकार का होता है जिसका औसत वजन 1.2 से 1.5 किग्रा. तक होता है। फल में गूदे का रंग पीला होता है, जिसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 13.2 ब्रिक्स होती है। औसत उपज प्रति रश 80 से 90 फल प्रति पौधा होती है।

सी.ओ. 5: इस प्रजाति का चयन वर्ष 1985 में वाशिंगटन प्रजाति से किया गया है। यह एक डायोसियस प्रजाति है जो पपेन उत्पादन हेतु सर्वोत्तम पायी गयी है। प्रति फल 14.45 ग्राम शुष्क पपेन पाया जाता है। पत्ती के डंठल का रंग गुलाबी होता है। फल का औसत वजन 1.5 से 2.0 किग्रा. होता है। फल में कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 13 ब्रिक्स होती है। 2 वर्ष के फसल चक्र में औसत उपज 75–80 फल प्रति

पौध होती है। शुष्क पपेन की औसत उपज 1500–1600 किग्रा. प्रति हेक्टेयर होती है जिसमें 72 प्रतिशत प्रोटीन पायी जाती है।

राँची ड्वार्फः यह प्रजाति राँची (झारखंड) के आस पास छोटानागपुर क्षेत्र में पायी जाती है। इसमें नर, मादा तथा उभयलिंगी तीनों प्रकार के पेड़ मिलते हैं। इसके फल काफी बड़े होते है तथा उभयलिंगी फल का वजन 15 किग्रा. तक पाया गया है। मादा पेड़ से एक फल का वजन 5 से 8 किग्रा. तक पाया गया है जो दूर से देखने पर कद्दू जैसा दिखाई देते हैं। लेकिन इसका बीज बाहर कही भी ले जाकर बोने से फल का वजन घट जाता है।

पौध प्रवर्धनः

पपीता का व्यवसायिक प्रवर्धन बीज द्वारा होता है। किन्तु पपीता को बड़े पैमाने पर उगाने में सबसे बड़ी बाधा शुद्ध बीज का उपलब्ध न होना है। अतः पपीता का शुद्ध बीज ही बुवाई हेतु उपयोग करना चाहिए जो कि किसी शोध संस्थान या प्रमाणित बीज भंडार से क्रय करना चाहिए।

बीज की मात्राः 300–500 ग्राम प्रति हेक्टेयर।

पौध तैयार करनाः पौधशाला में बीज बोने के लिए 3 मीटर लम्बी, 1 मी. चौड़ी तथा 15 सेंमी. ऊँची क्यारियाँ बनाना चाहिए। मिट्टी में गोबर की खाद मिलाकर बारीक बना लेना चाहिए। बीज को क्यारी में कतार में लगाना चाहिए। कतार से कतार की दूरी 10 सेंमी. तथा बीज को 1 सेंमी. गहरा बोना चाहिए। इसके बाद बीज को गोबर की खाद या कम्पोस्ट को भुरभुरी बनाकर ढक देना चाहिए। वर्षा या तेज धूप से बीज को बचाने के लिए खर या पुआल से ढक देना चाहिए। इसके उपरांत पौधशाला में सुबह फब्बारे से पानी प्रतिदिन देना चाहिए जब तक बीज का अंकुरण न हो जाय। पौधे को गलका रोग से बचाने के लिए बीज को थायरम, केप्टान या सिरेसान (2 ग्राम प्रति किग्रा. बीज) नामक दवाओं से उपचारित करना चाहिए। पौधशाला में जब भी गलका रोग दिखाई पड़े बोर्डो मिश्रण (5:5:50) या मैंकोजेब या रिडोमिल या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (2 ग्राम प्रति लीटर पानी में) का तुरन्त छिड़काव करना चाहिए। पपीते का बीज 7 से 15 दिन के भीतर जम जाते हैं तथा जमने के बाद पुआल हटा देना चाहिए। पुआल हटाने के बाद फब्बारा द्वारा हल्की सिंचाई कर देना चाहिए।

पौधों को पॉलिथीन के थैलियों में उगनाः पौधों को पॉलिथीन की थैलियों में उगाने हेतु छेद किये गये 150 से 200 गेज वाले पॉलिथीन के थैलों जिनकी लम्बाई 22 सेंमी. तथा चौड़ाई 15 सेंमी. हो काम में लाया जा सकता है। थैलों को एक तिहाई बालू, एक तिहाई कम्पोस्ट तथा एक तिहाई मिट्टी मिलाकर भर लेना चाहिए। प्रति थैले में 3–4 बीज एक सेंमी. की गहराई पर बोने के बाद पानी से सिंचाई कर देना चाहिए। पौधे जमें के बाद उचित देखभाल करनी चाहिए।

पौध तैयार करने का समयः साधारणतया पपीते का बीज नर्सरी में रोपने की निर्धारित तिथि से दो महीने पहले बोना चाहिए। इस प्रकार पौधे मुख्य क्षेत्र में रोपाई के समय करीब 15–20 सेंमी. की ऊँचाई के हो जाते हैं। बिहार में जहाँ पानी जमाव की समस्या है तथा वर्षा के दिनों में विषाणु रोग अधिक तेजी से फैलते हैं वहाँ अगस्त के अंत में या सितम्बर के शुरू में नर्सरी में बीज बोना चाहिए।

पौध रोपण एवं देखभालः पपीता की खेती हेतु ऐसी जगह का चुनाव करना चाहिए जहाँ बरसात में पानी नही ठहरता हो। भूमि का चुनाव करने के बाद गर्मी के दिनों में भूमि को अच्छी तरह 2–3 बार जुताई करके तैयार करना चाहिए। प्रति इकाई क्षेत्रफल में अधिक उपज प्राप्त करने के लिए पपीता को 1.8 x 1.8 मी. की दूरी पर लगाना चाहिए। पौध लगाने हेतु निर्धारित दूरी पर गर्मी के दिनों में 60 x 60 x 60 सेंमी. के आकार के गड्ढे तैयार कर लेना चाहिए। गड्ढे को 15 दिन तक खुला छोड़ दें। वर्षा शुरू होने के पूर्व गड्ढे के ऊपर की भुरभुरी मिट्टी में 20 किग्रा. गोबर की सड़ी खाद, 1 किग्रा. नीम की खली तथा 1 किग्रा. हड्डी का चूर्ण तथा 5 से 10 ग्राम फ्यूराडान का मिश्रण मिलाकर गड्ढे को अच्छी तरह भर दें। जब पौधे नर्सरी में 15–20 सेंमी. की ऊँचाई के हो जायें तब अक्टूबर माह में पौधों को गड्ढे के बीचों बीच लगाये। डायोसियस किस्म का तीन पौधे तथा गायनोडायोसियस किस्म का एक पौधा प्रति गड्ढा लगाना चाहिए। इसके बाद प्रत्येक पौधे को हल्की सिंचाई करनी चाहिए।

पौधों को खेत में लग जाने के बाद समुचित देखभाल करने की आवश्यकता पड़ती है। कभी–कभी अधिक वर्षा के कारण भी पौधे नष्ट हो जाते हैं। अतः उन्हें उचित देखरेख द्वारा बचाना चाहिए। जाड़े के दिनों में जहाँ ठंड अधिक पड़ती है, कोमल पौधों को पॉलिथीन या ज्वार की पट्टी द्वारा ढक देना चाहिए। कुछ कीड़े कोमल पौधों को काटकर शुरू में नष्ट कर देते हैं उनसे पौधों को बचाना चाहिए। वर्षा के कारण नष्ट हुए पौधों को बसंत ऋतु में दूसरा पौधा लगाकर भर देना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक: पपीते को बहुत अधिक खाद की आवश्यकता होती है। इस क्षेत्रीय स्टेशन पर किये गये प्रयोगों द्वारा साबित हुआ है कि प्रत्येक फलने वाले पेड़ों को 200—250 ग्रा. नाइट्रोजन, 200—250 ग्रा. फ़ॉस्फोरस तथा 250 से 500 ग्रा. पोटाश देने से अच्छी उपज प्राप्त होती है। साधारणतया उपरोक्त खाद तत्वों के लिए यूरिया 450 से 550 ग्रा. सिंगल सुपर फ़ॉस्फेट 1200 से 1500 ग्रा. तथा म्यूरियेट ऑफ़ पोटाश 450—850 ग्रा. लेकर उन्हें मिश्रित कर लेना चाहिए तथा चार भागों में बाँट कर प्रत्येक माह के शुरू में जुलाई से अक्टूबर तक वृक्ष के छाँव के नीचे पौधे से 30 सेमी. की गोलाई में देकर मिट्टी में अच्छी तरह मिला देना चाहिए। खाद देने के बाद हल्की सिंचाई कर देना चाहिए। इसके अतिरिक्त सूक्ष्म तत्व बोरॉन (1 ग्रा. प्रति लीटर पानी में) तथा जिंक सल्फेट (5 ग्रा. प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव पौध रोपण के चौथे एवं आठवें महीने में करना चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन: पपीता के सफल उत्पादन के लिए बगीचे में जाल प्रबन्धन बहुत ही आवश्यक है। जब तक पौधा फलन में नहीं आता तब तक हल्की सिंचाई करनी चाहिए जिससे पौधे जीवित रह सके। अधिक पानी देने से पौधे काफी लम्बे हो जाते है तथा विषाणु रोग का प्रकोप भी ज्यादा होता है। फल लगने से लेकर पकने तक पौधों को अधिक सिंचाई की आवश्यकता होती है। ऐसा देखा गया है कि पानी की कमी के कारण फल झड़ने लगते है। गर्मी के दिनों में एक सप्ताह के अंतराल पर तथा जाड़े के दिनों में 15 दिन के अंतराल पर सिंचाई करना चाहिए। पपीता में टपकन सिंचाई प्रणाली (ड्रिप) के अंतर्गत 8—10 लीटर पानी प्रति दिन देने से पौधे की वृद्धि एवं उपज अच्छी पायी गयी है। इस प्रकार 40—50 प्रतिशत पानी की भी बचत होती है। मृदा नमी को संरक्षित करने के लिए पौधे के तने चारों तरफ सूखे खर पतवार या काली पॉलिथीन की पलवार विछाना चाहिए।

फूलन एवं फलन: पौधे लगाने के लगभग 6 माह बाद मार्च—अप्रैल माह से पौधों में फूल आने लगते है। पपीता में मुख्य रूप से तीन प्रकार के लिंग नर, मादा एवं उभयलिंगी पाये जाते हैं। नर एवं उभयलिंगी पौधे वातावरण के अनुसार लिंग परिवर्तन कर सकते हैं किन्तु मादा पौधे स्थायी होते हैं। नर एवं मादा पौधों की पहचान फूल का आधार पर कर सकते है। ज्योंही नर पौधे दिखाई पड़े तुरन्त काटकर खेत से निकाल देना चाहिए। किन्तु परागण हेतु खेत में 10 प्रतिशत नर पौधे अवश्य छोड़ देना चाहिए।

रोग एवं कीट नियंत्रण:

आर्द्रगलन रोग: यह बीमारी पौधशाला में पीथियम एफैनिडरमेटम नामक कवक के कारण होती है। इसका प्रभाव नये अंकुरित पौधों पर होता है तथा पौधे का तना जमीन के पास से सड़ जाता है और पौधा मुरझाकर गिर जाता है। अतः इससे बचाव के लिए नर्सरी की मिट्टी को बोने से पहले फारमेल्डिहाइड के 2.5 प्रतिशत घोल से उपचारित कर पॉलिथीन से 48 घंटों के लिए ढक देना चाहिए तथा बीज को थायरम, केप्टान (2 ग्रा. प्रति किग्रा. बीज) नामक दवाओं से उपचारित कर बोना चाहिए। पौधशाला में इस रोग से बचाव के लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड या मैंकोजेब (2 ग्रा. प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव एक सप्ताह के अंतराल पर 3—4 बार करना चाहिए।

जड़ एवं तनों का सड़ना: यह रोग पीथियम एफैनिडरमेटम एवं फाइटोफ्थोरा पामीवोरा नामक कवक के कारण होता है। इस रोग में जड़ तथा तना सड़ने से पेड़ सूख जाता है। इसका तने पर प्रथम लक्षण जलीय धब्बे के रूप होता है। जो बाद में बढ़कर तने के चारों तरफ फ़ैल जाता है। पौधे के ऊपर की पत्तियाँ मुरझाकर पीली पद जाती है तथा पेड़ सूखकर गिर जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए पपीता को जल जमाव क्षेत्र में नही लगाना चाहिए तथा पपीता के बगीचे में जल निकास का उचित प्रबंध होना चाहिए। यदि तने में धब्बे दिखाई देते हो तो मैंकोजेब मेटालाक्सिल या मैंकोजेब (2 ग्रा. प्रति लीटर पानी में) का घोल बनाकर पौधों के तने के पास मिट्टी में छिड़काव करना चाहिए।

फलों का सड़ना (एंथ्रेक्नोंज): यह पपीता के फल की प्रमुख बीमारी है। यह कोलिटोट्राईकम ग्लीयोस्पोरायडस नामक कवक के द्वारा होती है। इस रोग में फलों के ऊपर छोटा जलीय धब्बा बन जाता है जो बाद में बढ़कर पीले या काले रंग का हो जाता है। यह रोग फल लगने से लेकर पकने तक लगता है जिसके कारण फल पकने के पूर्व ही गिर जाते है। इसकी रोकथाम के लिए ब्लाइटाक्स 50 या मैंकोजेब (2.5 ग्रा. प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव करना चाहिए।

कली एवं फल के तनों का सड़ना: यह पपीता में लगने वाली एक नई बीमारी है जो फ्यूजेरियम सोलनाई नामक कवक के द्वारा लगती है। शुरू में इस रोग के कारण फल तथा कलिका के पास का तना पीला हो जाता है जो बाद में फल के पूरे तना पर फ़ैल जाता है। जिसके कारण फल सिकुड़ जाते हैं तथा

बाद में झड़ जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए बोर्डो मिश्रण (5:5:50) का 1.5 प्रतिशत या कॉपरऑक्सी क्लोराइड (3 ग्रा. प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव करना चाहिए।

चूर्णी फफूंद: यह रोग ओडियम यूडिकम कैरिकी नामक कवक से होता है। इससे प्रभावित पत्तियों पर सफेद चूर्ण जमाव हो जाता है जो बाद में सूख जाती हैं। इस रोग की रोकथाम के लिए सल्फेक्स (2 ग्रा. प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव करना चाहिए।

पर्ण कुंचन रोग: यह पपीते का एक गंभीर विषाणु रोग है। इस रोग के कारण शुरू में पौधों का विकास रुक जाता है और पत्तियाँ गुच्छा नुमा हो जाती है तथा पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है। पत्तियों का ऊपरी सिरा अंदर की ओर मुड़ जाता है। प्रभावित पौधों में फूल एवं फल नही लगते हैं।

पपीते का रिंग स्पॉट रोग: पर्ण कुंचन की तरह यह भी एक विषाणु रोग है। इस रोग में पपीते की पत्तियाँ कटी–फटी सी हो जाती है तथा हर गाँठ पर कटे–फटे पत्ते निकलने लगते है। पत्तियों के तनों एवं फलों पर छोटे गोलाकार धब्बे पद जाते है। प्रभावित फल का आकार अच्छा नही होता है तथा फलत बहुत ही कम हो जाती है। फल की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है।

विषाणु रोग वर्षा के दिनों में काफी तेजी से फैलता है। अतः वर्षा के समाप्त होने पर (अक्टूबर माह) खेत में पपीता लगाने से विषाणु रोगों का प्रभाव कम होता है। यह विषाणु रोग कीटों जैसे सफेद मक्खी और माहू से फैलते हैं। अतः इनकी रोकथाम हेतु डाइमेंथोएट (2 मिली. प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव प्रति माह करना चाहिए। नीम की खली, कम्पोस्ट खाद के उपयोग करने पर विषाणु रोग का प्रकोप कम होता है। इस रोग से प्रभावित पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए। पपीते में कीट बहुत कम लगते हैं। इसमें मुख्य रूप से माहू है जो पत्तियों के निचले भाग में छेद कर रस चूसता है तथा विषाणु रोगों के फैलाने में वाहक के रूप में कार्य करता है। इसके नियंत्रण के लिए इमिडाक्लोरोप्रिड (2 मिली. प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव करना चाहिए।

(पृष्ठ 15 का शेष)

पोधों को प्राप्त होते हैं।

भारतीय मृदा में अभी तक केवल मुख्य पोषक तत्वों की कमी थी परन्तु सघन कृषि एवं अधिक उत्पादन फलस्वरूप मृदा में गौण तत्वों जैसे गन्धक एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी पायी जाने लगी है। फसलों में इनके प्रयोग का लाभदायक परिणाम भी परिलक्षित होने लगा है। खासकर सब्जी वाली फसलों जैसे बैगन, फूलगोभी, टमाटर इत्यादि पर किये शोधों में सल्फर एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों के पर्णीय छिड़काव के काफी उत्साहवर्धक नतीजे सामने आने लगे हैं। अतः सब्जियों का अधिक उत्पादन लेने के लिए इनका प्रयोग बहुत ही जरूरी हो गया है। सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग मुख्यता मृदा में तथा फसलों पर पर्णीय छिड़काव के रूप में किया जाता है। गंधक के लिए यदि किसान सिंगल सुपर फास्फेट का प्रयोग फास्फोरस के स्त्रोत के लिए करें तो काफी हद तक गंधक की आपूर्ति मृदा में की जा सकती है क्योंकि सिंगल सुपर फास्फेट में 12 प्रतिशत गंधक भी पाया जाता है। सूक्ष्म पोषक तत्वों का पर्णीय छिड़काव निम्न सारणी में दिये गये विवरण के अनुसार करना चाहिए।

सारणी:–सूक्ष्म पोषक तत्वों का पर्णीय छिड़काव के लिए स्त्रोत, संस्तुत सांद्रण एवं प्रति 600ली0/है के लिए आवश्यक मात्रा (ग्राम)

इनका पर्णीय छिड़काव फसल के कल्ले निकलने, फूल लगने एवं फल लगने वाले अवस्थाओं पर कर देना चाहिए। कमी के लक्षण आने का इन्तजार नहीं करना चाहिए। सूक्ष्म पोषक तत्वों का बुरकाव खेत में एक समान करना चाहिए। इसके लिए सूक्ष्म पोषक तत्वों को 20–25 किग्रा0 सूखी महीन गोबर की खाद, रेत या मिट्टी में मिलाकर खेत में बुरकाव करना चाहिए। इनका प्रयोग मृदा में दो से तीन फसलों के अन्तराल पर करना चाहिए।

उर्वरकों के उपयोग द्वारा वांछित वृद्धि न होने का प्रमुख कारण–

- उर्वरकों का असंतुलित मात्रा में प्रयोग।
- नकदी फसलों मे आवश्यकता से अधिक उर्वरकों का प्रयोग।
- गौण व सूक्ष्म तत्वों की कमी।
- उर्वरकों का गलत विधि व गलत तरीके से प्रयोग।
- अनुचित जल प्रबन्ध।
- फसलों मे कीट व्याधि व रोग तथा खरपतवारों की बढ़ती समस्या और समय से उनका नियंत्रण न हो पाना।
- नहरी क्षेत्रों में भूगर्भ जल स्तर ऊपर उठने से जल प्लावन तथा लवणीयता, क्षारीयता की समस्या।
- लगातार एक ही फसल चक्र अपनाने से व रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से मिट्टी के भौतिक व रासायनिक गुणों में गिरावट।

बेल की वैज्ञानिक खेती

प्रमोद कुमार सिंह* एवं अंकिता गौतम**

भारत के प्राचीन फलों में बेल का प्रमुख स्थान है भारतीय धर्म ग्रंथों में इसे भगवान शिव के वृक्ष के रूप में वर्णित किया गया है। बेल की जड़ छाल पत्ते और फल औषधियां रूप में उपयोग में लाई जाती हैं इस में पाए जाने वाला मारमेलोसिंन नामक पदार्थ उदर रोगों में बहुत ही लाभदायक होता है। इसके फलों से परिरक्षित पदार्थ जैसे मुरब्बा, शरबत, टॉफी तथा नेक्टर आदि पदार्थ बनाया जाता है। शुष्क क्षेत्रों में फलोत्पादन की सबसे बड़ी समस्या जल की कमी है। ऐसी दशा में वार्षिक फसलों की तुलना में फल वृक्ष को कम जल की आवश्यकता होती है। कम सिंचित क्षेत्रों में बेल की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। आज के संदर्भ में जब भारतीय जनता औषधीय फलों के प्रति अधिक जागरूक हो गयी है तथा बेल के फलों के लिए अधिक मूल्य देने को तैयार है, इसकी बागवानी बहुत लाभप्रद हो गयी है। अतः इसकी बागवानी को बढ़ावा देने की आवश्यकता है, ताकि आगे भी अच्छा फल प्राप्त होते रहे।

भूमि जलवायुः बेल एक बहुत ही सहनशील वृक्ष है। इसे किसी भी प्रकार की भूमि में उगाया जा सकता है, परन्तु जल निकासयुक्त बलुई दोमट भूमि इसकी खेती के लिए अधिक उपयुक्त है। समस्याग्रस्त क्षेत्रों—ऊसर, बंजर, कंकरीली, खादर, बीहड़ भूमि में भी इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। वैसे तो बेल की खेती के लिए 6—8 पी.एच मान वाली भूमि अधिक उपयुक्त होती है। भूमि में पी.एच मान 8.5 बेल की व्यावसायिक खेती की जा सकती है। इसका वृक्ष 7 डिग्री. सेन्टीग्रेड से 48 डिग्री. से तक तापमान को सफलतापूर्वक सहन कर सकता है। फल लगते समय वर्षा या तेज हवा से फलों के झड़ने की संभावना अधिक रहती है। इसके पेड़ की टहनियों पर कांटे पाये जाते हैं और मई—जून की गर्मी के समय इसकी पत्तियाँ झड़ जाती है, जिससे पौधों में शुष्क और अर्द्धशुष्क जलवायु को सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है।

उन्नत किस्मेः बेल में अत्यंत जैवविधिता पाई जाती है तथा इसके आंकलन की आवश्यकता है। नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय और गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय द्वारा चयनित किस्मों के कारण पूर्व में विकसित किस्मों, जैसेः सिवान, देवरिया, बड़ा कागजी, इटावा, चकिया, मिर्जापुरी, कागजी गोण्डा आदि के रोपण की सिफारिश अब नहीं की जा रही है। कुछ प्रमुख नवीनतम उन्नत किस्मों का संक्षिप्त विवरण निम्न है।

नरेन्द्र बेल —5ः इस किस्म के पौधे कम ऊँचाई वाले (3—5 मी.) और अधिक फैलाव लिये होते हैं। फल चपटे सिरे वाले मध्यम आकार के, मीठे स्वाद होते हैं। फलों का औसत वजन 1—1.5 किलो ग्राम तक होता है तथा फलों का छिलका पतला होता है। गूदे में रेशे और बीज की मात्रा काफी कम पायी जाती है। पेड़ों से औसत उपज 70—80 किलोग्राम प्रति वृक्ष तक प्राप्त की जाती है।

पंत शिवानीः इस किस्म के पेड़ ऊपर की तरफ बढ़ने वाले और अधिक फैलाव लिये जाते हैं। फल चपटे सिरे वाले, मध्यम आकार के, मीठे स्वाद होते हैं। फल अंडाकार लम्बे, औसत वजन 1.2—2.0 किलोग्राम छिलका मध्यम पतला, गूदा अधिक (70—75 प्रतिशत), रेशा कम, अच्छी मिठास वाला और स्वादिष्ट होता है। फलों की भंडारण क्षमता अच्छी होती है तथा पेड़ों की औसत उपज 50—60 किलोग्राम वृक्ष तक पायी जाती है।

पंत अर्पणाः यह एक बौनी और विरल वाली किस्म है, जिसकी शाखाएं नीचे की तरफ लटकती रहती है। पत्तियाँ बड़ी, गहरे रंग की और नाशपाती की तरह होती है। पेड़ों पर कांटे कम पाये जाते हैं तथा फल जल्दी और उपज अच्छी होती है। फल गोलाकार और 0.6 से 0.8 किलोग्राम औसत भार के और पतले छिलके वाले होते है। पकने पर फलों का रंग हल्का होता है। इसमें बीज, लिसलिसा पदार्थ, खटास व रेशा कम पाया जाता है। लिसलिसा पदार्थ व बीज अलग थैलियों में बंद होता है, जिसे आसानी से अलग किया जा सकता है। अतः यह किस्म परिरक्षण के लिए ज्यादा उपयुक्त सिद्ध हो सकती है। फलों का गूदा मध्यम मीठा (टी.एस.एस. 35—40 ब्रिक्स), स्वादिष्ट और सुवासयुक्त होता है।

पंत उर्वशीः इस किस्म के पेड़ घने और लम्बे होते हैं। यह एक मध्यम समय में पकने वाली किस्म है। फलों का आकार अंडाकार तथा प्रति फल भार 1.6 किलोग्राम तक होता है। छिलका मध्यम पतला, गूदा

*एस.एम.एस.(उद्यान) कृषि विज्ञान केन्द, बहराईच, **शोध छात्रा, डॉ. भीम राव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ।

मीठा स्वादिष्ट और सुवासयुक्त होता है। फलों में गूदे की मात्रा 68.5 प्रतिशत और रेशे की मात्रा कम पायी जाती है।

पंत सुजाता: इस किस्म के पेड़ मध्यम आकार के घने और फैलने वाले होते हैं। यह शीघ्र फल देने वाली और मध्यम समय में पकने वाली किस्म है। फल गोल लेकिन दोनों सिरे चपटे होते हैं। फलों का औसत भार 1.14 किलोग्राम छिलका पतला और हल्के पीले रंग वाला, रेशा कम होता है। फलों में गूदे की मात्रा 77.8 प्रतिशत तक पायी जाती है। पेड़ों की औसत उपज 45–50 किलोग्राम प्रति वृक्ष तक पायी जाती है।

सी.आई.एस.एच.बी. 1: इस किस्म के पौधे मध्यम ऊँचाई वाले कम फैलाव लिये होते हैं। फल, आकार में अंडाकार, लम्बाई 15–17 सेंमी. और व्यास 39–40 सेंमी. तथा अधिक मिठासयुक्त होते हैं। फलों का औसत वजन (0.8–1.2) तक पाया जाता है। फलों का छिलका पतला (0.10–0.12 सेंमी.) होता है। फलों में रेशे और बीज की मात्रा कम पायी जाती है और औसत उपज 50–60 किलोग्राम प्रति वृक्ष तक हो जाती है।

सी.आई.एस.एच.बी. 2: इस किस्म के पौधे कम ऊँचाई वाले और कम फैलाव लिये होते हैं। फल, आकार में बड़े, लम्बाई तक पाया जाता है। फल अधिक मिठासयुक्त और पतले छिलके वाले होते हैं। फलों में रेशा और बीज की मात्रा काफी कम होती है। इस किस्म के पौधों की उपज 40–50 किलोग्राम वृक्ष तक पायी जाती है।

प्रवर्धन: बेल के पौधे मुख्य रूप से बीज द्वारा तैयार किये जाते हैं। बीजों की बुआई फलों से निकालने के तुरन्त बाद 15–20 सेंमी. ऊँचाई वाली 1.10 मीटर की बनी बीज शैयया (सीड बैड) में 1–2 सेंमी. की गहराई पर कर देनीचाहिए। बुआई का उत्तम समय मई–जून होता है। व्यावसायिक स्तर पर बेल की खेती के लिए पौधों को चश्मा विधि से तैयार करना चाहिए। चश्मा की विभिन्न विधियों में पैबंदी चश्मा विधि जून–जुलाई में चढ़ाने से 80–90 प्रतिशत तक सफलता प्राप्त की जा सकती है और सांकुर शाख की वृद्धि भी अच्छी होती है। कालिका को 1–2 वर्ष पुराने बेल के बीजू पौधे पर ध्रुवता को ध्यान में रखते हुए चढ़ाना चाहिए। जब कालिका ठीक प्रकार से फुटाव ले ले तो मूलवृंत को कालिका के ऊपर से काट देना चाहिए। पॉली और नेट हाउस की सहायता से कोमल शाखाओं का चयन करते है। इस विधि में क्लेफ्ट या वेज विधि से ग्राफ्टिंग करके 80–90 प्रतिशत तक सफलता प्राप्त की जा सकती है। इस विधि से सफलता प्राप्त करने के लिए पॉली हाउस में 28.2 डिग्री सेल्सियस तापमान, 70–75 प्रतिशत आर्द्रता और फुहारे का अंतराल रखना उचित है।

गड्ढे की तैयारी तथा पौध रोपण: बेल के पेड़ों की रोपाई 6–8 मीटर की दूरी पर मृदा उर्वरता के अनुसार करनी चाहिए। रोपण के लिए जुलाई–अगस्त अच्छा पाया गया है। पौध लगाने के एक माह पूर्व 6–8 मीटर के अंतर पर 75 से 100 घन सेंटीमीटर के गड्ढा तैयार कर लेते हैं। यदि जमीन में कंकड़ की तह हो तो उसे निकाल देना चाहिए। इन गड्ढों को 20–30 दिनों तक खुला छोड़कर 3–4 टोकरी गोबर की सड़ी खाद गड्ढों की ऊपरी आधी मिट्टी में मिलाना चाहिए। ऊसर भूमि में प्रति गड्ढे के हिसाब से 20–25 किलोग्राम बालू तथा पी.एच मान के अनुसार 5–8 किलोग्राम जिप्सम/पाइराइट भी मिला कर 6–8 इंच ऊँचाई तक गड्ढों को भर देना चाहिए। इन्हीं तैयार गड्ढों में जुलाई–अगस्त में पौध रोपण करना चाहिए। पौधे लगाने के बाद हल्की सिंचाई करना उपयुक्त होता है। शुष्क और अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में जहाँ सिंचाई की समुचित व्यवस्था न हो वहाँ स्वस्थाने बाग़ स्थापन विधि को प्रोत्साहित करना चाहिए।

शिखर रोपण विधि: यह देखा गया है कि बीजू/देशी पौधे बहुतायत में पाये जाते हैं जिनके फल छोटे आकार के और कम गुणवत्ता वाले होते हैं। ऐसे पौधों को उन्नत किस्मों में बदलने के लिए शिखर रोपण करना चाहिए। इसके लिए पेड़ की मोटी शाखाओं को जमीन से उचित ऊँचाई (2.5–3.0 मी.) पर मार्च में शिखर से काटकर उस हिस्से को गीली मिट्टी और टाट से ढक देते हैं। जब इन कटे हुए भागों से नई शाखाएं निकल कर कलम बाँधने योग्य हो जाएं तो उन पर जून–जुलाई में कलिकायन कर दिया जाता है। जब कलिकाएँ अच्छी तरह से फुटाव ले लेती है तो पुरानी शाखाओं को ऊपर से काट दिया जाता है। इस प्रकार के पौधों में तीसरे वर्ष से उपज प्राप्त होने लगती है।

पौधों की अच्छी बढ़वार, अधिक फल और पेड़ों को स्वस्थ रखने के लिए प्रत्येक पौधे में 5 किलोग्राम गोबर की सड़ी खाद, 50 ग्राम नाइट्रोजन, 25 ग्राम फ़ॉस्फोरस और 50 ग्राम पोटाश की मात्रा प्रति वर्ष प्रति वृक्ष डालनी चाहिए। खाद और उर्वरक की यह मात्रा दस वर्ष तक इसी अनुपात में बढ़ाते रहना चाहिए। इस प्रकार 10 वर्ष या उससे अधिक आयु वाले वृक्ष को 500 ग्राम नाइट्रोजन 250 ग्राम फ़ॉस्फोरस और 500 ग्राम

पोटाश के अतिरिक्त 50 किलोग्राम गोबर की सड़ी खाद डालना उत्तम होता है। ऊसर भूमि में उगाये गये पौधे में प्रायः जस्ते की कमी के लक्षण दिखाई देते हैं। अतः ऐसे पेड़ों में 250 ग्राम जिंक सल्फेट प्रति पौधे के हिसाब से उर्वरकों के साथ डालना चाहिए या 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का पर्णीय छिड़काव जुलाई, अक्टूबर व दिसम्बर में करना चाहिए। खाद और उर्वरकों की पूरी मात्रा जून–जुलाई में डालनी चाहिए। जिन बागों में फलों के फटने की समस्या हो उनमें खाद और उर्वरकों के साथ 100 ग्राम/वृक्ष बोरेक्स (सुहागा) का प्रयोग करना चाहिए।

सिंचाई: नये पौधों को स्थापित करें तो एक–दो वर्ष सिंचाई की अत्याधिक आवश्यकता पड़ती है। स्थापित पौधे बिना सिंचाई के भी अच्छी तरह से रह सकते हैं। गर्मियों में बेल का पौधा अपनी पत्तियाँ गिरा कर सुषुतावस्था में चला जाता है इसके अलावा इसमें पुष्पण तथा फल वृद्धि बरसात के मौसम से शुरू होकर जाड़े के समय तक होती है। इस तरह यह सूखे को सहन कर लेता है। सिंचाई की सुविधा होने पर मई–जून में नई पत्तियाँ आने के बाद दो सिंचाई 20–30 दिनों के अंतराल पर कर देनी चाहिए।

पौधों की सधाई, छंटाई और अंतः फसलें: पौधों की सधाई, सुधरी प्ररोह विधि से करना उत्तम पाया जाता है। सधाई का कार्य शुरू के 4–5 वर्षों में करना चाहिए। मुख्य तने को 75 सेंमी. तक अकेला रखना चाहिए। इसके बाद 4–6 मुख्य शाखाएं चारों दिशाओं में बढ़ने देनी चाहिए। बेल के पेड़ों में विशेष सधाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है परन्तु सूखी, कीड़ों और बीमारियों से ग्रसित टहनियों को समय–समय पर निकालते रहना चाहिए। शुरू के वर्षों में नये पौधों के बीच खाली जगह का प्रयोग अंतः फसल लेते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ऐसी फसलें नहीं लेनी चाहिए जिन्हें पानी की अधिक आवश्यकता हो और वह मुख्य फसल को प्रभावित करें। इसके अलावा ऊसर भूमि में लगाये गये बागों में सनई, ढैंचा की फसलें लगा कर उन्हें वर्षा ऋतु में पलट देने से भूमि की दशा में भी सुधार किया जा सकता है।

रोग और कीटः

बेल का कैंकरः यह रोग जैन्थोमोनस विल्वी बैक्टीरिया द्वारा होता है। प्रभावित भागों पर पानीदार धब्बे बनते हैं जो बाद में बढ़ कर भूरे रंग के हो जाते हैं। बाद में पूर्व प्रभावित भाग का उत्तक गिर जाता है और पत्तियों पर छिद्र बन जाते हैं। इस रोग की रोकथाम के लिए स्ट्रेप्टोसाइक्लिन सल्फेट (200 पी.पी.एम.) को पानी में घोल कर 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए।

छोटे फलों का गिरनाः इस रोग का प्रकोप फ्यूजेरियम नामक फफूंद द्वारा होता है। इस रोग में बेल के छोटे फल (2–3 इंच व्यास वाले) गिरते हैं। पहले डंठल वाले छोर पर फ्यूजेरियन फफूंद का संक्रमण होता है तथा एक भूरा छोटा घेरा फल के ऊपरी हिस्से पर विकसित होता है। डंठल और फल के बीच फफूंद विकसित होने से जुड़ाव कमजोर हो जाता है और फल गिर जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए जब फल छोटे हों, कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) का दो छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर करना चाहिए।

डाई बैकः इस रोग का प्रकोप लेसिया डिप्लोडिया नामक फफूंद द्वारा होता है। इस रोग में पौधों की टहनियां ऊपर से नीचे की तरफ सूखने लगती है। टहनियों और पत्तियों पर भूरे धब्बे नजर आते हैं और पत्तियाँ गिर जाती है। इस रोग के नियंत्रण के लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत) का दो छिड़काव सूखी टहनियों को छांट कर 15 दिनों के अंतराल पर करना चाहिए।

फलों का गिरना/आंतरिक विगलनः बेल के बड़े फल अप्रैल–मई बहुतायत में गिरते हैं। गिरे बेलों में आंतरिक विगलन के लक्षण पाये जाते हैं। साथ बाह्य त्वचा में फटन भी पायी जाती है। इस रोग के नियंत्रण के लिए 300 ग्राम बोरेक्स प्रति वृक्ष का प्रयोग करना चाहिए। साथ जब फल छोटे आकार के हों तो एक प्रतिशत बोरेक्स का दो बार छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर करना चाहिए।

फलों का सड़नाः बेल के ऐसे फल जिन्हें तोड़ते समय गिरने से फलों की बाह्य त्वचा में हल्की फटन हो जाती है, वे फल तेजी से सड़ जाते हैं। ऐसे फलों में एस्परजिलस फफूंद फल के अंदर विकसित होती है तथा अंदर का गूदा अधिक मुलायम तथा तीक्ष्ण गंध वाला हो जाता है। इसके नियंत्रण के लिए फलों को सावधानी से तोड़ना चाहिए, जिससे फल जमीन पर न गिरें और फलों की त्वचा पर फटन न होने पाये साथ ही ऐसे फल मृदा के संपर्क में नहीं आने चाहिए।

पत्तियों पर काले धब्बेः बेल की पत्तियाँ पर दोनों सतहों पर काले धब्बे बनते हैं, जिनका आकार आमतौर पर 2.3 मि.मी. का होता है। इन धब्बों पर काली फफूंदी नजर आती है, जिसे आइसेरेआप्सिस कहते हैं। इसके रोकथाम के लिए कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) या डाईफोलेटान (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करना

(शेष पृष्ठ 31 पर)

सफलता की कहानी

समेकित खेती से राम कीरत मिश्र हुए मालामाल

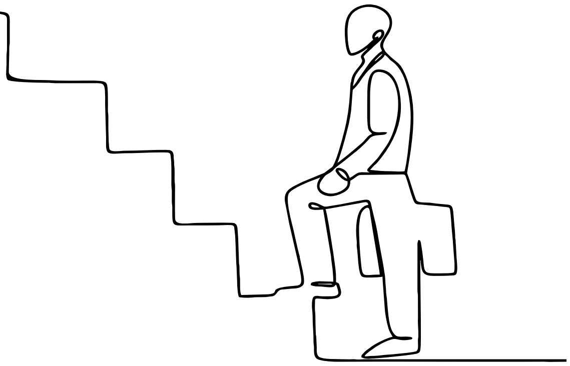

वी०पी० सिंह, गौरव पाण्डेय एवं सौरभ वर्मा

कृषक का नाम : **कृषि रत्न राम कीरत मिश्र**
पिता का नाम : **श्री लालता प्रसाद मिश्र**
पता : **पंडित का पुरवा, दूबेपुर, सुल्तानपुर**
मोबाइल : **9445685684**

- **भूमि उपलब्धता** 3 हेक्टेयर।
- **विशेषता** एस. आर. आई., एस. डब्लू–आई. कम्प्रेटिव स्टडी ऑफ़ मेनी वैराइटीज ऑफ़ राइस एंड व्हीट, नेचुरल फार्मिंग, ट्रेडेशनल फार्मिंग प्रैक्टिसेज, इन्वॉल्वेशन ऑफ़ नैनो यूरिया एंड नैनो डी.ए.पी फार्मिंग ब्लैक गोल्ड राइस।

विवरण	कुल आय (रू०/हे०)	शुद्ध आय (रू०/हे०)
फसलें	641700	473700
बागवानी	80400	20600
पशुपालन	204000	111500
योग	926400	605800

- **कृषि एवं संबद्ध गतिविधियों में सफलता प्राप्त करने से पहले किसान की प्रारंभिक स्थितिः** फसलें 64700–47200 प्रारंभ में धान एवं गेहूं की पारंपरिक रूप से खेती करते थे।

फसलें / इकाई

1. धान	–	2.2 हेक्टेयर
2. गेहू	–	2 हेक्टेयर
3. सरसों	–	0.4 हेक्टेयर
4. मिलेट्स	–	0.5 हेक्टेयर
5. अरहर	–	0.1 हेक्टेयर
6. फूल एवं सब्जी	–	0.3 हेक्टेयर
7. चारा फसल	–	0.2 हेक्टेयर

- **कृषि एवं संबद्ध गतिविधियों में सफलता प्राप्त करने के बाद किसान की स्थितिः** जब कृषि विज्ञान केंद्र के वैज्ञानिक एवं कृषि विभाग के संपर्क में आने पर खेती के साथ–साथ सहव्यवसाय पशुपालन एवं सब्जी एवं फूल की खेती वैज्ञानिक तकनीक से करना शुरू किया तब से मैं बहुत खुश हूं मेरी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति बहुत मजबूत हो गई है।
- **उपलब्धियाँः 1.** चौधरी चरण सिंह किसान सम्मान कृषि रत्न की उपाधि प्राप्त, **2.** धान के उत्पादन प्रदेश में प्रथम स्थान, **3.** आई. आई. वी. आर. वाराणसी द्वारा राष्ट्रीय स्वर्ण पदक, **4.** आई. ए.आर.आई पूसा नई दिल्ली द्वारा इन्नोवेटिव फार्मर्स अवार्ड, **5.** यू.पी. डास्प द्वारा उत्तर प्रदेश का सर्वोत्कृष्ट किसान घोषित, **6.** आई. डब्लूः एम. पी द्वारा उत्कृष्ट किसान सम्मान, **7.** कृषि प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान कानपुर द्वारा सम्मान पत्र, **8.** माननीय कुलपति आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज द्वारा कृषक सम्मान पत्र प्राप्त, अब तक कृषि उद्यान एवं पशु पालन के क्षेत्र में 100 से अधिक पुरस्कार एव सम्मान प्राप्त हुए
- **मूल्य संवर्धन, अतिरिक्त आय, लिंग सशक्तिकरण, नवाचार :** एस . आर . आई., एस. डब्लू. आई. कम्पेरटिव स्टडी ऑफ़ मेनी वैराइटीज ऑफ़ राइस एंड व्हीट, नेचुरल फार्मिंग, ट्रेडीशनल फार्मिंग प्रैक्टिसेज, इन्वॉल्वेशन ऑफ़ नैनो यूरिया एंड नैनो डी.ए.पी फार्मिंग ब्लैक गोल्ड राइस।

कृषि विज्ञान केन्द्र, सुल्तानपुर, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रोद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

फरवरी माह में किसान भाई क्या करें

फसलों में

डॉ. आर.आर. सिंह

अपर निदेशक प्रसार/प्राध्यापक (मृदा विज्ञान)

(1) समय से बोये गये गेहूँ में अवस्थानुसार नत्रजन की शेष मात्रा की टाप ड्रेसिंग करें।

(2) जिस फसल में बालियाँ निकल आई हैं और उनमें कुछ काली बालियाँ दिखायी दें तो उन्हें निकालकर नष्ट कर दें या गाड़ दें।

सब्जी एवं उद्यान में

अश्वनी कुमार सिंह

विषय वस्तु विशेषज्ञ (उद्यान)

(1) गर्मी वाली बैंगन की पौध जो नवम्बर माह में डाली गयी थी उसकी रोपाई लम्बी किस्म में 60 X 60 सेमी तथा गोल वाली किस्म में 75 X 75 सेमी पर करें।

(2) गर्मी वाली मूली पूसा चेतकी किस्म की बुवाई करें।

(3) लोबिया की पूसा कोमल, पूसा फागुनी, ऋतुराज 1552 किस्मों की बुवाई 20 किग्रा नत्रजन, 50 किग्रा फास्फोरस तथा 30 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से कूड़ों में डाल कर करे।

(4) इस माह में भिण्डी की परभनी क्रान्ति, पूसा सावनी पंजाब–7 प्रजातियों की बुवाई 20–25 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से बीज को 2 ग्राम कैप्टान या थीरम से प्रति किग्रा बीज उपचारित करने के बाद करें।

(5) आम में खर्रा रोग की रोकथाम के लिए 2 ग्राम घुलनशील गंधक अथवा कैराथेन एक मिली लीटर प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

(6) आम के पाँच वर्षीय पेड़ में 25 किग्रा गोबर, 250 ग्राम नाईट्रोजन, 125 ग्राम फास्फोरस तथा 250 ग्राम पोटाश मिट्टी में मिलाकर गुड़ाई कर देना चाहिए तथा नमी के कमी की दशा में सिंचाई आवश्यक है।

पौध संरक्षण

डॉ. वी. पी. चौधरी एवं डॉ. पंकज कुमार

सहायक प्राध्यापक (पादप रोग)

(1) गेहूँ में झुलसा एवं गेरूई रोग के नियंत्रण के लिए 0.2 प्रशित डाइथेन एम–45 अथवा प्रोपीकोनाजोल 0.1 प्रतिशत के घोल का छिड़काव करें।

(2) मटर में बुकनी रोग के नियंत्रण के लिए घुलनशील गंधक के 0.3 प्रतिशत अथवा कैराथेन के 0.1 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।

(3) तिलहनी फसलों में झुलसा, सफेद, गेरूई एवं तुलासित रोग नियंत्रण के लिए डायथेन एम–45 के 0.2 प्रतिशत के घोल का छिड़काव करें।

(4) प्याज की बैंगनी धब्बा रोग के नियंत्रण के लिए 0.3 प्रतिशत ताम्रयुक्त रसायन के घोल का छिड़काव करें।

(5) आम के भुनगा कीट नियंत्रण के लिए मोनोक्रोटोफास अथवा मेटासिस्टाक्स 1 से 1.25 मिली प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

पशुपालन

डॉ. सुरेन्द्र सिंह

विषय वस्तु विशेषज्ञ (पशु विज्ञान)

(1) गर्भित तथा शीघ्र ब्यायी भेड़ों की उचित देखभाल किया जाये।

(2) मुर्गियों से अच्छा उत्पादन लेने के लिए उन्हें पौष्टिक आहार के साथ–साथ बरसीम घास भी दिया जाये।

(3) मुर्गियों का उत्पादन स्तर तथा अच्छी वृद्धि बनाये रखने के लिए बिछावन की प्रतिदिन सफाई किया जाये तथा सप्ताह में कम से कम दो बार उसकी गुड़ाई अवश्य किया जाये।

प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के

प्रश्न : अमरूद की खेती कैसे करें?

(श्री पंचम यादव, टिकरा पूरे साउ का पुरवा, जनपद अयोध्या)

उत्तर : इलाहाबाद सफेदा, लखनऊ–49, चित्तीदारर लालगूदे वाला, बेदाना अमरूद की प्रमुख किस्में हैं। इसके पौध लगाने का उपयुक्त समय जुलाई–अगस्त का महीना है। पौध लगाने के लिए 75 सेमी लम्बे और 75 सेमी चौड़े तथा एक मीटर गहरे गढ्ढे खोदकर 15–20 दिन तक खाली छोड़ देना चाहिए। इसके बाद उनमें सड़ी गोबर की खाद और मिट्टी बराबर मात्रा मे

संकलनकर्ता : डॉ. अनिल कुमार विषय वस्तु विशेषज्ञ, प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

मिलाकर गढ़ढे में भरकर सिंचाई कर देना चाहिए। इस प्रकार तैयार किये गये गढ़ढे में पौध लगाना चाहिए।

प्रश्न : पपीते के पौधों में फल गुच्छेदार हो रहा है इसकी रोकथाम कैसे करें?

(श्री राम अयोध्या कुशवाहा, जनपद अमेठी)

उत्तर : यह विषाणु रोग का लक्षण है जिसके कारण पौधों की वृद्धि रूक जाती है और फूल–फल नहीं लगते। इसकी रोकथाम के लिए प्रभावित फल को काट कर जमीन में दबा दें। पपीता के बाग में जल निकास का उचित प्रबन्ध रखें और जून–जुलाई में कीटनाशी दवा का एक या दो छिड़काव कर देना चाहिए।

प्रश्न : सरसों की खड़ी फसल में माँहू का कीट नियंत्रण कैसे करें?

(श्री गौरव कुमार, ग्राम तिरहुत, जनपद सुल्तानपुर)

उत्तर : सरसों की खड़ी फसल में माँहू के कीट नियंत्रण हेतु ऐसीटाप्रिड 200 ग्राम दवा अथवा इमिडाक्लोप्रिड 2 मिली की दवा 750 लीटर पानी मे घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

प्रश्न : आम में बौर आने वाले है उन दवा कैसे छिड़कें या बिना छिड़के उपचार हो सकता है?

(श्री जगदम्बा यादव, अमानीगंज, जनपद अयोध्या)

उत्तर : आम के बौर को खर्रा रोग तथा भुनगा कीट से बचाने के लिए बौर आने के बाद, परन्तु फूल खिलने से पहले 2 ग्राम घुलनशील गंधक (सल्फेक्स) तथा 0.5 मिली इमिडाक्लोप्रिड प्रति लीटर पानी मे घोलकर छिड़काव करें। दूसरा छिड़काव 1 मिली कैराथेन+1 मिली मेटासिस्टाक्स अथवा इन्डोसल्फान का प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर फल टिकाव के बाद करें।

प्रश्न : गेहूँ में बथुवा अधिक होता है इसकी रोकथाम कैसे करें?

(श्री समसेर, बसखारी, अम्बेडकर नगर)

उत्तर : गेहूँ की फसल की 35 दिन की अवस्था पर 2',4–डी. सोडियम सॉल्ट 80 प्रतिशत की 625 ग्राम मात्रा को 500 से 600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव कर सकते हैं। परन्तु इससे अच्छे परिणाम के लिए सल्फोसल्फ्यूरान मिथाइल 16.5 ग्राम प्रति हेक्टेयर 600 से 800 लीटर पानी में घोलकर उक्त अवस्था पर छिड़काव करने से गेहूँ की फसल की अधिकांश खरपतवार समूल नष्ट हो जाती है।

प्रश्न : दुधारू पशुओं को संतुलित आहार (दाना) कितनी मात्रा में दें?

(श्री गिरिराज वर्मा, बीकापुर, जनपद अयोध्या)

उत्तर : दुधारू पशुओं को संतुलित आहार की मात्रा उनके दुध उत्पादन की क्षमता के ऊपर निर्भर करता है। दुधारू भैंस को 2.5 किग्रा दुग्ध उत्पादन पर 1 किग्रा दाना तथा गाय को 3 किग्रा दुग्ध उत्पादन पर 1 किग्रा दाना देना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त 1 से 1.5 किग्रा दाना उसके स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए अतिरिक्त देना आवश्यक है।

(पृष्ठ 28 का शेष)

खाद एवं उर्वरक

पौधे की आयु	पौधे की आयु गोबर की खाद किलोग्राम	पोषक तत्व प्रति वर्ष पर वर्ष (ग्राम) नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश
1 वर्ष	10	50	25	50
2 वर्ष	20	100	50	100
3 से 9	50	250	150	250
10 वर्ष	100	500	250	500

चाहिए।

कीटः बेल को बहुत कम नुकसान पहुँचाते हैं। पर्ण सुरगीं और पर्ण भक्षी झल्लीं थोड़ा नुकसान पहुंचाती है। यह पेड़ की पत्तियों को काटकर नुकसान पहुंचाती है। इन कीटों की रोकथाम के लिए 0.1 प्रतिशत) या थायोडॉन (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव सप्ताह के अंतराल पर करना चाहिए।

फलों की तुड़ाई और उपज

फल अप्रैल–मई में तोड़ने योग्य हो जाते हैं। जब फलों का रंग गहरे हरे रंग से बदल कर पीला हरा होने लगे तो फलों की तुड़ाई 2 सेंमी. डंठल के साथ करनी चाहिए। तोड़ते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि फल जमीन पर न गिरने पायें। इससे फलों की त्वचा चटक जाती है, जिससे भंडारण के समय चटके हुए भाग से सड़न आरंभ हो जाती है।

कलमी पौधों में 3–4 वर्षों में फल प्रारंभ हो जाती है, जबकि बीजू पेड़ 7–8 वर्ष में फल देते हैं। प्रति वृक्ष फलों की संख्या वृक्ष के आकार के साथ बढ़ती रहती है। 10–15 वर्ष के पूर्ण विकसित वृक्ष से 100–150 फल प्राप्त किये जा सकते हैं।

पंजीयन संख्या - 54461/91

डाक पंजीयन संख्या एल. डब्लू./एन.पी. 34

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

द्वारा

कृषि तकनीकी सूचना केन्द्र

के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रामोपयोगी पुस्तकें

प्रति रूपये 25/–मात्र

पुस्तक	मूल्य रु.
आधुनिक मधुमक्खी पालन एवं प्रबन्ध	20.00
जिमीकन्द की खेती	15.00
मशरूम उत्पादन एवं उपयोगिता	12.00
किसानोपयोगी फसल सुरक्षा तकनीक	50.00
फसल उत्पादन तकनीक	35.00
जीरो टिल सीड कम फर्टी ड्रिल	10.00
फल–सब्जी परीरक्षण एवं मानव आहार	50.00
गन्ने की आधुनिक खेती	15.00
जीरो टिलेज गेहूँ बुवाई की एक विश्वसनीय तकनीक	20.00
केचुआ पालन (वर्मीकल्चर) एवं वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन	10.00
व्यावसायिक कुक्कुट (ब्रायलर) उत्पादन	20.00
फसलों के सूत्रकृमि रोग एवं उनका वैज्ञानिक प्रबन्धन	25.00
आय संवर्धन हेतु प्रमुख सब्ज़ियों की उत्पादन तकनीक	25.00
गृहणियों के लिए बेकिंग कला	25.00
स्वच्छ दूध उत्पादन तकनीक एवं उसका महत्व	20.00
गायों एवं भैसों के मुख्य रोग, टीकाकरण एवं संतुलित पशु आहार	20.00
मछली पालन	40.00
फसल अवशेष प्रबंधन	30.00

मुद्रित

सेवा में,

श्री/श्रीमती

प्रेषक:

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या की ओर से डॉ. आर.आर. सिंह अपर निदेशक प्रसार द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित